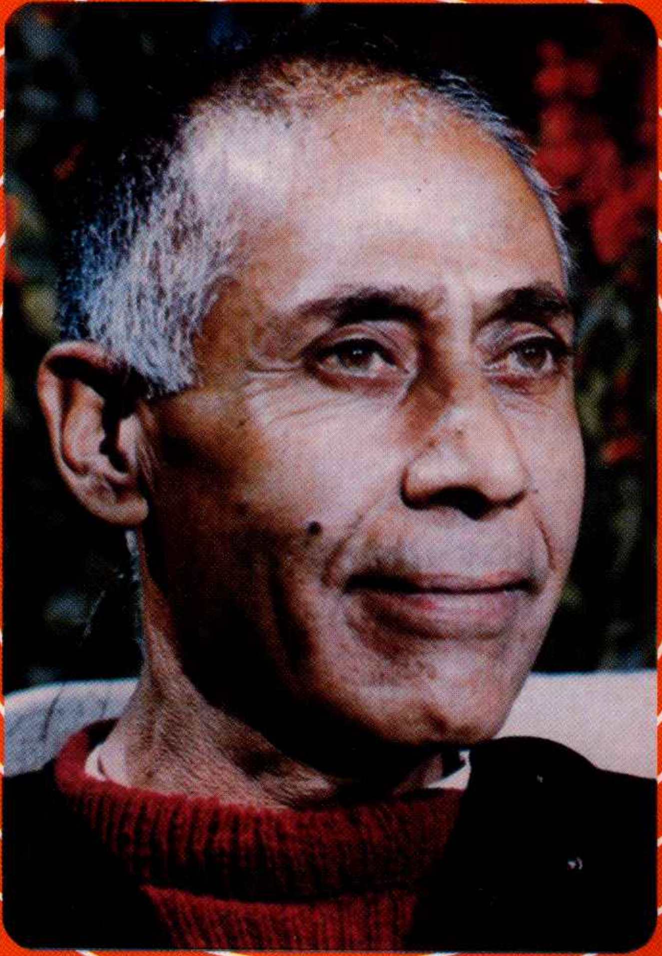
तेषां व्यवहृतौ समा सर्वत्र संस्थितिः।



'सहज विचार' भाग ३

**श्री उत्पलदेवाचार्य कृत शिवस्तोत्रावली
का कशमीरी अनुवाद**

दीन

सहज विचार

भाग ३

श्री उत्पलदेवाचार्य कृत शिवस्तोत्रावली
का कशमीरी अनुवाद

पद्यानुवादक तथा संपादक

दीनानाथ गंजू

भगवान् ईश्वरस्वरूप से परम्परागतप्राप्त शैवशास्त्र रस की चमत्कर्त्री
श्रीमती प्रभादेवी द्वारा संशोधित

पद्यानुवादक तथा संपादक : दीनानाथ गंजू

संशोधिका : श्रीमती प्रभादेवी जी

प्रकाशक : दीनानाथ गंजू

प्रथम संस्करण : 4 मई, 1997

मूल्य : रु० 100/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

1. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, निशात, श्रीनगर, कश्मीर
2. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, जम्मू कार्यालय : 2 महेन्द्रनगर, कनाल रोड़, जम्मू (तवी)
3. ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, दिल्ली कार्यालय : जे-77, कालकाजी, नई दिल्ली - 110 019

मुद्रक : मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली - 110 002

प्रस्तावना

श्रीमत् उत्पलदेव द्वारा रचित शिव स्तोत्रावली ग्रन्थ त्रिकशास्त्र का सर्वोपरि भक्ति-पूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। इस में न केवल भक्ति का ही समावेश है अपितु कविता में ही सैद्धान्तिक विषयों पर भी प्रकाश डाला है। उत्पलदेव जी के गुरु आचार्य सोमानन्द थे, जिनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिव-दृष्टि' त्रिक-शास्त्र का अमूल्य रत्न है। उत्पलदेव जी के पिता का नाम 'उदयाकर' तथा पुत्र का नाम 'विभ्रमाकर था। कशमीर के किस भाग में इनका निवास स्थान था, इस का परिचय पूर्ण रूप से नहीं मिलता है।

श्री सोमानन्द के शिष्य होने के नाते स्वभावतः ये उत्पलदेव इनके समकालीन थे अतः इनका स्थिति-काल नवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के आस-पास रहा होगा।

उत्पलदेव ने कई ग्रन्थों को लिख कर त्रिक-दर्शन को आकर्षक बनाया है। उनकी मुख्य कृतियां ये हैं :-

१. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा
२. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-वृत्ति
३. ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-टीका
४. संबन्ध सिद्धि
५. अजडप्रमातृसिद्धि
६. ईश्वर सिद्धि
७. शिवदृष्टि-वृत्ति
८. शिवस्तोत्रावली

कहते हैं उत्पलदेव जी ने अपनी समावेश दशा में आकर शिवस्तोत्रावलि की रचना की है। ये ग्रन्थ बीस स्तोत्रों से सुसज्जित है। इस के तीन स्तोत्रों के नाम संग्रह-स्तोत्र, जय-स्तोत्र तथा भक्ति-स्तोत्र उत्पलदेव जी ने स्वयं रखे हैं। शेष सत्रह स्तोत्र के नाम आचार्य विश्वावर्त्त ने स्वयं रखे हैं। यह परिचय हमें इस ग्रन्थ के टीकाकार क्षेमराज जी से मिलता है।

हमारे गुरुदेव श्रीमान् ईश्वर-स्वरूप जी महाराज अपने मौन-वृत्त के दिनों में इस ग्रन्थ का पाठ लग्न से किया करते थे। कभी कभी इन श्लोकों के मर्म का अनुभव करके महाराज जी के नेत्रों से अश्रु-धारा बहती थी। महाराज जी कहा करते थे, जो भक्त नियम-पूर्वक इन श्लोकों का पाठ करेगा, उसे मानसिक तथा शारीरिक पीड़ायें बाधित नहीं करेंगी। महाराज जी ने ई० सन् १९६४ में स्वयं इस ग्रन्थ का अनुवाद हिन्दी में किया और कई बार अपने मुखारबिन्द से अपने शिष्यों को कशमीरी भाषा में इन श्लोकों का अर्थ भावावेश में आकर पढ़ाया। इस ग्रन्थ के प्रति महाराज जी का अनुराग देख कर, उनके परम शिष्य दीनानाथ जी का हृदय भी पसीज गया। फल यह हुआ कि इन्होंने गुरुवर्य की शरण लेकर सम्पूर्ण ग्रन्थ के श्लोकों का उल्था कशमीरी भाषा में तथा आंगल भाषा में कर डाला। ये दोनों अनुवाद दीनानाथ जी ने अक्षरशः न करके, गुरु चरणों की उपासना से उत्पन्न भावों का प्रदर्शन करते हुए किया है। जहां पर दीनानाथ जी के भावों में शैथिल्य आ जाता है वहीं ये गुरुवर्यों की उपासना करने लग जाते है। प्रतीत होता है इन्होंने अपने सर्वस्व गुरुदेव को कामधेनु वत् समझा है, जब भी अनुवाद करते हुए रुक जाते हैं ये गुरु चरणों में झुक कर उन से प्रार्थना करते हैं, फल यह होता है लेखनी का प्रवाह फिर से चल पड़ता है। संग्रह-स्तोत्र का कशमीरी भाषा में उल्था करते हुए हिन्दी में भी इन श्लोकों को कविता का रूप दिया है भाव-विभोर होकर दीनानाथ जी अपनी सीमित अहंता को कुछ क्षणों के लिए भूल कर अनन्त में विचरण करने लग जाते हैं। ऐसा होना उन्हीं के लिए स्वाभाविक है जिन्हें गुरुवर्यों की अपार दया हो। मैंने यह सम्पूर्ण ग्रन्थ बांचा। इस के भावों का मर्म हृदयग्राही देखा। आशा है कशमीरी जनता इसे पढ़ कर लाभान्वित होगी, ऐसा होगा तो दीनानाथ जी का यह प्रयास सफल होगा।

गुरुकृपागाहिनी
प्रभा देवी

जय गुरुदेव

आभार

मैं सद्गुरु देव भगवान् ईश्वर-स्वरूप जी महाराज का अत्यन्त आभारी हूं जिन की अपार कृपा से मेरे जैसा अनपढ़ व्यक्ति यह सेवा कार्य कर सका।

मैं श्रीमती प्रभा देवी का आभारी हूं जिन्होंने इस सारी पुस्तक को सुना, पढ़ा और यथास्थान समुचित संशोधन करके इसे संवारा। यहां इसका उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इन्होंने पांच दशकों से भी अधिक समय तक अपने गुरु महाराज के समीपस्थ रहकर उनकी चरण सेवा की और समय-समय पर प्रमुख शैव-शास्त्रों का अध्ययन भी किया।

दीन

जय गुरुदेव

इस पुस्तक के विषय में

'सहज विचार' भाग तीन को सद्‌गुरु महाराज की आज की जन्मजयन्ती पर प्रकाशित होना हम सब गुरु भाईयों के लिए अपार प्रसन्नता का विषय है। सहज-विचार भाग दो में शिवसूत्र, साम्बपञ्चाशिका, परमार्थ-सार जैसे शैवग्रन्थों का कश्मीरी भाषा में पद्यानुवाद करके पुस्तक के लेखक श्री दीनानाथ जी गंजू ने अपनी विद्वत्ता का पूर्ण परिचय दिया था। इसके अतिरिक्त अन्त पर प्रकीर्ण कश्मीरी कविताओं का गुच्छा भाग दो का चौथा पुष्प था जिसमें विविध भावों की महक चारों ओर व्याप्त थी। सहज विचार के प्रस्तुत तीसरे भाग में आचार्य उत्पलदेव की शिवस्तोत्रावली का कश्मीरी भाषा में पद्यान्तरण करके कविवर ने अनिर्वचनीय कार्य किया। शिवस्तोत्रावली के बीस स्तोत्रों का मातृभाषा में पद्यान्तरण अक्षरशः न करके भावानुवाद के रूप में सम्पन्न करना भी सद्‌गुरु महाराज की चरणों की अनन्य उपासना का ही परिणाम है। विषयवस्तु की सीमा का जहां कही अतिक्रमण हुआ है वहां विद्वद्वर ने मनोहर शब्द विन्यास से उसे इस तरह संवारा सजाया है कि कोमल बुद्धि वाले पाठक भी उसे आसानी से समझ सकते हैं। कश्मीरी भाषा साहित्य में इस पुस्तक के प्रकाशन से एक नया अध्याय जुड़ गया है। आजतक भाषा इतिहास में किसी भी कवि ने इस दुरूह विषय पर लेखनी उठाने का साहस नहीं किया था क्योंकि भावों का यह उपवन ही ऐसा है कि जिसमें प्रवेश पाने के लिए सलीके से रत्नों को तराशने की निपुणता का होना आवश्यक है।। कविवर 'दीन' इस क्षेत्र में पहिले मातृभाषा कवि हैं जिनका नाम सदा आदर से लिया जायेगा। आचार्य उत्पलदेव का भावुक कविहृदय, जो आज से एक हजार वर्ष पूर्व कश्मीर के उन्मुक्त प्राकृतिक वातावरण में उन्मत्त होके परासंवित्ति के गहरे रंग में रंग गया था, यह देखकर झूम उठेगा कि उनकी ही जन्मभूमि से आज एक और साधक कवि ने मातृभाषा में, उनकी ही भक्ति रचना को अनूदित करके भक्तिरस भागीरथी से उपासकों और शिवप्रेमियों को आप्लावित किया।

कश्मीरी भाषा में शिवस्तोत्रावली का पद्यान्तरण करके कवि 'दीन' के मन में यह इच्छा पनपने लगी थी कि क्यों न अंग्रेजी भाषा के आधुनिक मुक्त छन्द में भी इसका रूपान्तरण किया जाय। यहां इस बात का उल्लेख करना असमीचीन नहीं होगा कि इस पुस्तक के कुछेक स्तोत्रों का अंग्रेजी भाषा में रूपान्तरण इन्होंने सद्‌गुरु महाराज के सान्निध्य में बहुत पहले किया था और सद्‌गुरु महाराज ने उसे बांचा था और सराहा था। अबकी बार "सहज विचार" भाग तीन का दूसरा महकता हुआ फूल इसी संपूर्ण स्तोत्र ग्रन्थ का अंग्रेजी पद्यानुवाद है। इस पद्यानुवाद को संपूर्ण करने में कविवर को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा पर जिस लगन, धैर्य और साहस से इन्होंने इस कार्य को सम्पन्न किया वह सराहनीय है। एक हजार साल प्राचीन इस पुस्तक का अंग्रेजी भाषा में आजतक केवल दो ही प्रतिष्ठित विद्वानों ने पद्यान्तरण करने की पहल की थी। उनमें एक विदेशी और एक स्वदेशी था। कविवर दीन की गणना इस क्षेत्र में तीसरे नम्बर पर है। यद्यपि कवि 'दीन' इन दो विद्वद्वरों के शब्दविन्यास के मोह से कहीं कहीं बच न सके फिर भी इन का भावगाम्भीर्य अपूर्व है क्योंकि उस पर सद्‌गुरु महाराज के अन्तस्तल

की छाप संपूर्ण रूप से पड़ी हुई है। सद्‌गुरु महाराज ने समय समय पर साधना की परिपक्वता के आने के साथ-साथ जो नवीनतम या उनके ही शब्दों में "Latest" सत्यों की व्याख्यान के समय उकेरा था, उनका विशेष ध्यान पद्यान्तरण करते समय रखकर कवि ने श्लाघनीय कर्म किया है। संस्कृत प्रतीकात्मक शब्दों का अंग्रेजी भाषा का समानार्थक शब्द ढूंढ़ने में कभी कभी विद्वान् कवि को प्रचलित हिन्दी संस्कृत-अंग्रेजी शब्द कोषों को दिनभर टटोलना पड़ता था फिर कहीं तत्सम शब्द हाथ आता था। उनका अदम्य उत्साह प्रेरणादायक था और इस सत्य को जतलाता था कि कविवर पर सद्‌गुरु महाराज की कितनी असीम अनुकम्पा है। इस महायाग का अनुष्ठान आरंभ करते ही साधक लेखक को दैहिक अस्वस्थता के निशाचरों ने कई बार आक्रान्त किया फिर भी उद्यमी समाविष्ट अप्रभावित रहा क्योंकि कहा है–

कीर्त्यश्चिन्तापदं मृग्यः पूज्यो येन त्वमेवतत्।
भवत् भक्तिमतां श्लाघ्या लोकयात्रा भवन्मयी॥

इसके अतिरिक्त कविवर ने इस रचना के आरंभ में विस्तृत भूमिका भी अंग्रेजी में लिखी जिसमें शैवशास्त्र का समीक्षात्मक विवेचन करके लेखक ने अपनी गहन साधना का पूर्ण परिचय दिया है। यह विवेचन भी स्वतन्त्र रूप में एक लघु पुस्तिका है जो अपना एक विशेष महत्त्व रखती है।

इस प्रकार तीन मोहक पुष्पों से अलंकृत किया गया "सहज विचार" का यह तीसरा भाग गुरु चरणों पर आज की जन्म जयन्ती पर समर्पित करके सुधी पाठक लाभान्वित होंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

प्रो० मखनलाल कुकिलू

वैशाख कृष्ण द्वादशी
सद्‌गुरु जन्म जयन्ती
४ मई, १९९७

GOLDEN RULES FOR HEALTH AND HAPPINESS

It is
What it is
As it is
'THAT' IT IS.

1. Always breathe through the nose.
2. Keep the mouth shut and the nose open 'AWARENESS'.
3. Talk only when you must.
4. Talk about the 1st person and the 2nd person and that too about the present only.

   The past is dead.
   Future unborn,
   Present is the reality.
   Act act act now,
   Do not let the reality slip away,
   It will never return.

5. Think of the subtle movement (स्पन्द), that takes place when you think "CONCENTRATION".
6. Set a goal for your life and work for that and that alone.
7. Be content with what you achieve and renew your efforts to better it.
8. Eat, preserving part of your hunger.
9. Sleep on the left.
10. Every day have a walk. Prefer a walk to a talk.
11. Never say 'ALAS'. This is hell.
12. Say it is all for the best or 'WHAT THEN'. This is heaven here and now.
13. Try, Try Again.
14. Limit your hate, but 'LOVE ALL' as much as possible.
15. Never get dejected or overjoyed.
16. Forget others' wrong done to you or to others, but remember how they do the right.
17. Repent if you have wronged anybody. But do not expect anything in return if you have done good.
18. Every thing on earth is limited. (MAYIC)
19. The limit is unlimited, ALMIGHTY.
20. Do not saw saw-dust, Talk only when you must.

"Din"

A poem by
Bhagwan Ishwar Swarup Ji

There is a point between sleep and waking
Where thou shall be alert without shaking

Enter into the new world
Where forms so hedious pass
They are passing, endure
Do not be taken by the dross
There the pulls and pushes about the throttle
All those shall thou tolerate

Close all ingress and egress
Yawning there may be
Shed tears crave-implore,
but thou wilt not prostrate

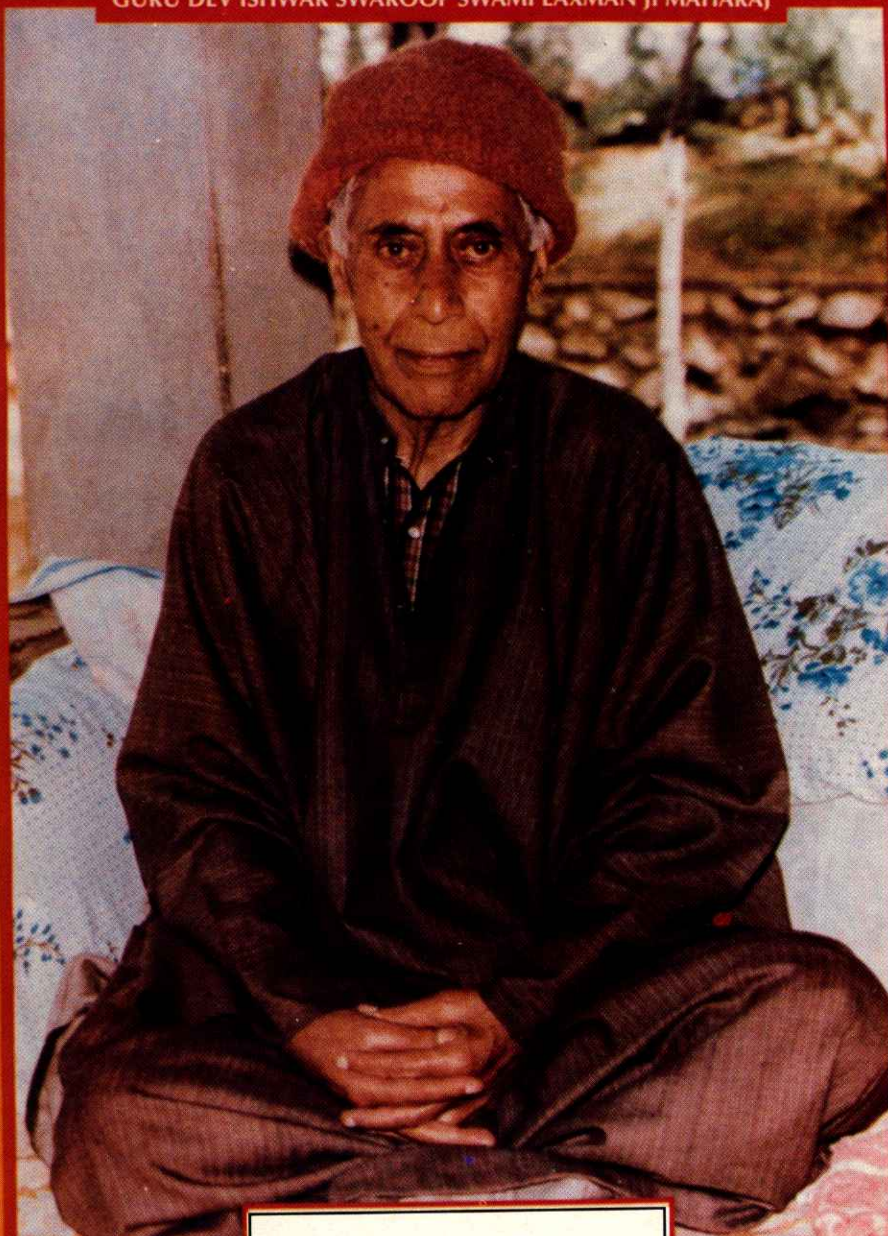
A "Thrill" passes and that
goes down to the bottom

It riseth May it bloom forth
That is bliss

Blessed being, Blessed being
O Greetings be to Thee

Jai Guru Dev

GURU DEV ISHWAR SWAROOP SWAMI LAXMAN JI MAHARAJ



आविर्भावदिवस	महासमाधिदिवस
9-5-1907	27-9-1991

लक्ष्मण जी रैणा
शैवाचार्य

ईश्वर आश्रम, निशात, काशमीर

ॐ

आशीर्वाद के दो शब्द

श्री दीनानाथ जी गन्जू मेरे भक्त और प्रिय शिष्य हैं, जिन्हों ने संपूर्णरूप से अपना हृदय मेरे में अर्पण किया है। इस आत्म-समर्पण के फल-स्वरूप उन के हृदय में ईश्वर के अनुग्रह से दिव्य वैखरी का प्रादुर्भाव हुआ। फलतः उन्हों ने काश्मीरी भाषा में सहज-विचार नाम वाला एक छोटा सा काव्य-बद्ध पुस्तक निर्मित किया। इस पुस्तक में केवल सहज-विचार ही नहीं अपितु गुरु-भक्ति का आभास भी चमक उठा है। मुझे आशा है कि गन्जू साहब इस को प्रकाशित करके मेरे भक्त-जनों में वितरण करेंगे। यदि ऐसा होगा तो मेरी आत्मा पूर्ण रूप से प्रफुल्लित हो जायेगी और जनता में नवीन पारमार्थिक विकास होगा।

कार्तिक शुक्ल सप्तमी
शुक्रवार

लक्ष्मण
ईश्वर आश्रम

WRITING KASHMIRI
IN
DEVANĀGARĪ SCRIPT

Without addition of any new symbol

A detailed study regarding how to write Kashmiri in a scientific way in Devanāgarī script was published by me, under the above nomenclature after its approval by Shri Swami Ji Maharaj, in 1978. All the script in this book has been written under the same system. A summary of the system is repeated hereunder, for ready reference :-

In addition to the usual signs in Hindi or Sanskrit.

1. Use ऽ as in अऽस्य=we, नऽर=arm, नऽव=new, घऽर=watch, च़ऽय=you, म्यऽच़=earth, च़ऽर=sparrow, च़ऽ तऽ तऽ ज़ऽ सऽच़=you and two tailers.
2. Use ऽऽ as in अऽऽस=mouth, नऽऽर=jug, दऽऽर=window, सऽऽरी=all, अऽऽस्य्=were, मऽऽज्य्=mother, वऽऽज्य्=ring, प्रऽऽञ=old
3. Use व as in न्वर=sleave, ग्व्ट=dim, थ्वुद=tall, द्वट=pony, गुउर=horse, ब्वुडऽः=old man, ब्वज्य्=old woman,
4. Use "व" as in स्वन=gold, र्‍वप=silver, द्वध=milk, ब्वद=intellect, य्वद=war, ग्वर=precepter
5. अः=flat ऽः as in सऽः=tiger, जऽः=two, जंगऽः=legs, तलऽः=under.
6. 1/2 य् preceeded by a vowel and 1/2 consonant. कऽऽत्य्=how many, तीत्य्=so many. सऽऽत्य्=with, शून्य्=space.
7. All ending consonants are हलन्त. If not the vowel is attached as in च़ऽ=you, बतऽ=cooked rice.
8. Use of ज़, च़ and छ़ in words like ज़ान=knowledge, च़ऽ=your, छ़यनुन=being cut; is well known
9. Words from Sanskrit and other languages have been written phonetically as pronounced in Kashmiri such as व्यचार for विचार, सम्व्यथ for संवित्त.

In this book :-

Non availability of a double word connected with य has caused such words to be separated and first half word written with a "हलन्त sign" such as टऽऽठ्य अटऽऽठ्य्

Dina Nath Ganjoo

Introduction

Kashmir Shaivism
Rationalised Spiritualism

This is a wonderful world. It is all variation. Two things are not the same. Even two hair from the same person appear different under a microscope. There is one more wonder. All this variable world keeps on changing moment by moment. Everything is different at the next moment.

In this world there are two kinds of objects—living and dead, stationary and moving, sentients and insentients. What is all this about ? What is its source and what is its end ? It all looks constant, without a beginning and without any end.

These are the thought materials of an individual person. There are insentients incapable to think, but there are sentients where the thinking power is variable. A man thinks, realizes, researches, frames rules, understands art, time, relation, science etc. etc. A dog understands his master only and is faithful to him. A bird knows his habitat and his mate, so on and so forth. This thinking power is variable not only in different animals but varies, from individual to individual. But it is almost perfect in man as a whole who alone is able to think, realize and rationalize all that has been said above.

Let us consider him only for the present.

Because of this power of thinking and understanding, man has tried to understand his ownself from times immemorial. It is said that the Vedas (meaning knowledge) came from the source. Did they come from the source or were they the accumulated experiences of man from times immemorial is not the subject of discussion here? But it is a fact, they seem to be earliest accumulation of knowledge in India or East. Similarly the old testament seems to be the accumulation of early knowledge in the West. One name common to both is Brahma and Ibrahim (Note the similarity of the two names). Brahma is said to be the origin of Vedas and Ibrahim the origin of what we call the old testament.

In India Vedas were followed by Upanishads, Puranas and six philosophies. These were given a mythological form in Puranas. The six philosophies have been consolidated in due course of time through another branch called Shaivism. This philosophy was prevalent in two forms all over India. One was the worship side of idols chief of them being in the form of a linga-falus; along with imaginations or realizations, put these idols into human shape of historical and mythological form.

Seeing to the peace obtained by individuals in the adoration of these mythological forms, it seems, though irrational, when seen under the modern scientific microscope, there is substance in these symbols, idols and stat-

ues as they satisfy individual ego, and many a time do seem to help.

Side by side of this mythological process the philosophical thought of Vedas and Upanishads also grew in the form of yoga, devotion and knowledge. These three systems are very very clear in Shrimad Bhagwadgita, the lesson taught by Lord Krishna to Arjuna, for preparing him to fight the battle of his life in Kurushetra, the field of action. Side by side of this philosophical thought, developed the thought of Shaivism with the help of various seers. In India there are six or seven types of Shaivism, most similar is philosophy and yoga practice with a little variation in each. They are called Agama Shastra and are mostly in the form of a dialogue between Shiva and Parvati, Shaive Shastras, and vice versa in, Shaktashastra. These Agama Shastras are also called Bhairava Shastras and are said to be ninetytwo in number.

Out of these Kashmir Shaivism has been termed by even modern Western writers as the quintessance of all Indian philosophies. This humble writer, not an authority on the subject, takes courage into his two hands to write what little he can, on this subject. All my writing is derived from my long company with my Gurudev Swami Lakshman Joo Maharaj of Kashmir (1907-1991) also called Ishwar Swarup (god's image) by his devotees and what little study of the literature on the system I could do in my short life in his presence and of some others. To some extent my personal effort of understanding and some experience (through the benediction) of my Guru Dev also, is involved here.

A very usual and important name of Kashmir Shaivism is Pratyabhijna प्रत्यभिज्ञा. Literary this word means "recognition". It means that the research on self has to be done by looking back on one's origin and finding out by (1) personal experience (2) with the help and teachings of one's guru (preceptor) and (3) by the study of scriptures. When the three tally, the experience of the aspirant is said to be on right lines. The original writing on this theory is 'Shiva Drishti' of Shri Somananda written in the 8th century A.D. But going further back there are Tantra Shastras, Malini Vijaya, Netra Tantra, Swachhand Tantra, Rudryamala etc. May be there have been many many more books, but which have been lost in the turmoil of history for India in general, and Kashmir in particular. Another Shastra which is almost akin to Kashmir Shaivism is Tripura Rahasya (Jnana Khanda) translated and published in English from the Ashram of Ramana Maharshi of Tirupati.

The Shiva Drishti of Somanand 700 verses was consolidated by Shri Utpaladev Acharya (also the author of Shivastotravali) into 190 aphorisms. He himself felt that his consolidation of Somananda's Shiva Drishti was too compact and concise and very difficult to understand. So for public good he himself wrote two commentaries on his own book "ईश्वर प्रत्यभिज्ञा". The smaller one called vritti has been published, by the Kashmir Govt. Research Deptt. The bigger one tika written by Shri Utpala Deva has not so far been available. It is said a copy exists in the family of late Shri Mahjoor, the great Kashmiri poet.

But they have not so far graced the world by its publication or sale.

Two commentaries on this tika do exist written by the greatest of Kashmir Shaivite writer Acharya Abhinavagupta. Both (1) Ishvara Pratyabhijna Vimarshini "ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी" and (2) Ishvara Pratyabhijna Vivriti Vimarshini "ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विवृति विमर्शिनी" have been published by the Kashmir Govt. Research Deptt. An English translation with corrected Sanskrit text of the Vimarshini has been published from Banaras by Late Dr. K. C. Pandey.

This Vimarshini was also researched upon and a book published on it by a research scholar Late Dr. R. K. Kaw who did a lot in his life time, for propagation of the philosophy, under the guidance of our respected Gurudev.

Of all the exponents of this philosophy both on the practical "yogic side" and theoretical—"knowledge side" in the modern times, no body can excell late Guru Dev Bhagwan Ishwar Swarup Swami Lakshman Joo Maharaj. Born in an affluent familiy of Kashmiri Pandits where spirituality had been glorious from ages immemorial from Gautam Maharishi and where the greatest Shaivite saint of the time Acharya Ram ji had automatically taken abode well before the birth of Swami ji, who was named Lakshman by Swami Ram ji himself. At the time of his birth Swami Ram had been in Samadhi in an adjoining room and as soon he was reported of the birth of a son he came into rupturous ecstasy, started dancing in merriment singing, Lakshman the brother of Ram had taken birth. Thus came the name to the new born baby, and a prediction by the saint that this baby Lakshman Joo was a born saint and scholar in his own right.

This prophecy was proved true only after three years when the kid Lakshman Joo would sit in a yogic posture of Siddhasana or Padmasana (lotus posture), meditate and get into Samadhi, for fairly long periods. The parents got anxious and called Swami Ram ji. Swami Ram came, sat just in front of the kid, went himself into Samadhi. After half an hour both came out of Samadhi and the remarks of Swami Ram are worth being noted "How I wish I also had the stage of Samadhi where this kid reaches". This shows that Swami Lakshman Joo was a born saint a "Yoga Bhrashta" as described in the 6th adhyaya of Shrimad Bhagwad Gita. He came from celestial lands uplifted so many like Shri Sharika Devi, Nil Kanth Baqaya, Acharya Rameshwar Jha, (An Acharya of Sanskrit grammar and philosophy from Banaras Sanskrit Mahavidyalaya and also from a family of great saints and scholars from Bihar, a great Sanskrit poet and seer who was introduced into Shaiva yoga by a mere touch of Swami ji and achieved Samadhi in just half an hour). Pt. Janki Nath Labru, Shrimati Prabha Devi ji, Pt. Samvit Prakash Dhar, Pt. Jia Lal Koul (Talib) and many more about 300 more aspirants. This humble writer had also the good luck to sit at his feet from 1953 to 1991.

Swami ji was 8(7½) years old when Swami Ramji attained Shivahood and gave up his mortal frame. Well before his passing away he had handed over the boy Lakshman Joo to

his seniormost disciple (Swami Mahtab Kak) for initiation. On maturity, and initiation into Kaladhava yoga, by Swami Mahtab Kak, Lakshman Joo felt difficulty in achievement. He was restless and in tears and lo ! Swami Ramji comes in his dream and instructs him to be attentive to "Sandhi" the junction of inhale and exhale at both inner and outer ends. After this direction, by Swami Ramji (in a dream) Swami Lakshman Joo got success in the yoga almost immediately and was happy and joyful. Needless to say that Bhagwan Gurudev has related this story to this writer and to many others many a time. He would relate this to impress on us the importance of awareness at Sandhi (junctions of inhaling and exhaling breath) at practice time.

The student Lakshman Joo had to break his school education only in his 8th class (at the age of 13/14 years) due to serious illness of his father Sh. Narayan Joo. The father ran a fleet of houseboats (designed by himself) and for upkeep of the fleet a workshop was necessary. On his getting sick, Swami ji was drawn out of the school to take over the workshop. After some time the father recovered and was astonished to see the zero progress of his well run workshop. Reason, Shri Lakshman Joo would go to the workshop engage the labour, sit on a chair, where meditation with Samadhi overcame him automatically. The workers also enjoyed, doing little work and naturally the outcome was meagre. The father took over the workshop and Shri Lakshman Joo went more and more to his Guru Mahtab Kak and his yoga practice. In the meantime Shri Lakshman Joo started reading Sanskrit grammar and Shaiva literature at the feet of one Pt. Maheshwar Razdan, one of the greatest Sanskrit scholars of the time and an authority on Kashmir Shaivism; an authoritative pandit in the Kashmir govt. research deptt. where research on Kashmir Shaivism, study, and publishing of old books on Kashmir Shaivism was done under the authority of the Maharaja Govt. This department did great service to Kashmir Shaivism by printing many books, from old manuscripts. It pains me to note here that many more Sharda manuscripts are lying and rotting unattended in the stores (Kashmir University) at present due to two reasons (1) There are very few people who can transcribe these valuable books from Sharda Script to Devanagari Script and with the change of the govt. after 1947 the Kashmir Govt. seems more interested in the research work on Persian, Arabic and Urdu literature and the research on Sanskrit works in Sharda or other scripts has been stopped under Govt. policy. How I wish some other Indian or Hindi authority were to take up the research on this old treasure once again.

Yes, I was writing about Kashmir Shaivism vis-a-vis study thereof by Swami Lakshman Joo at the feet of Pt. Maheshwar Razdan. By the time Pt. Maheshwar Razdan died Swami Lakshman Joo had published.

(1) Shrimad Bhagwad Gita Kashmir recension along with the tika of Abhinavagupta. This book has been quoted by Dr. Radhakrishnan at many places in his exposition of Gita Ji in English.

(2) A Hindi translation of Shri Samba Panchashika. A very great book on yoga written by Samba son of Shri Krishna the teacher of Gita to Arjuna.

By this time 1924-30 pressure was building on Swami ji for marriage and becoming a householder inspite of his repeated refusals.

When pressure on this front and on some others grew intense, the house was astonished, one morning to find Shri Lakshmana Joo's room empty, with a note that they need not search for him as he was leaving in search of the Bigger than the Biggest.

How could the family tolerate it. A search was launched and after four days Lakshman Joo was located at Sadhu-ganga an ashram 10/12 miles from Sopore. All went to him but he returned only after securing a promise that an Ashram for him would be built at Ishber 8 miles from Srinagar. Swami ji returned not to home but to the Ashram of Swami Atma Ram ji at Anantnag. In the meantime a small home at Marbal was built for him and later on construction started at Ishber Ashram. On completion of the house at Ishber in 1931, Swami Lakshman Joo moved into it after living in the Marbal small hut for 7/8 years.

At this junction a special mention of Shri Sharika Devi ji is essential. She was born 4 years after the birth of Swami Lakshman Joo. Like Swami ji she also had spiritual tendencies from her birth. Born in an opulent family of Pt. Jia Lal Sopri a very efficient engineer in Kashmir govt. service. The two families were related. The two children both very highly with spiritual tendencies met and instead of "falling in love" like ordinary people, decided to "rise in love". Both remained Brahmacharis all their life. Shri Sharika Devi ji becoming the first disciple of Swami Lakshman Joo and rose to super most spiritual degrees. It may be noted that Shri Sharika Devi remained a Brahmacharini. All great Lady saints Lala Ded and Rup Bhawani of Kashmir even were all married in their youth. But Shri Sharika Devi remained a Brahmacharini in Modern times. There have been no Brahmcharinis in Kashmir history since Vedic times.

When a house was built for Swami ji at Ishber the parents of Sharika Devi ji also built an Ashram for their recluse daughter, just adjoining Lakshman Joo's house. They remained almost together as a guru and disciple and actually rose and rose to highest pinnacles of spritualism, inspite of various malicious gossip in fallen people. Shri Sharika Devi ji studied Sanskrit grammar and all Shastras from Swami ji along with her younger sister Shri Prabha Devi ji, who was forced by nature, to retire to the company of her elder sister by the cruel hands of death, which snatched away her husband, only 2 years after marriage, without the birth of any child. The two sisters both of them devotees and disciples of Swami ji lived together in a separate building till 1963 when Swami ji built a new ashram by the roadside, between Nishat garden and Ishber, to avoid the trouble of going up to the old Ashram which was at an incomfortable height for old age. One guru and two disciple sisters here growing in spiritual grades day to day. Some more devotees had come for spiritual guidance to Shri Swami ji whom he

initiated. As they were almost all of them householders they returned to Srinagar after getting initiated. No body was permitted to stay overnight.

Swami ji held classes for his Kashmiri disciples about 150 to 200 by now on Sundays. There came some European aspirants as well. Among them Miss Silburn, a French lady, deserves special mention.

She studied a lot from Swami ji and enriched French literature by her translations. There were other European and American gentlemen who came and learned Shaivist literature went back and translated and printed their books. A book by Mr. Paul Reps named "Zen flesh, Zen bones" requires special mention. It contains a chapter on centerings the 112 dharnas of Vijnana-Bhairava which the author studied with Swami ji.

Later on a class was also held by Swami ji once in a week for Mrs. Denis and John Hughs (who had to leave India in 1986-87 due to political reasons). Mr. John Hughs and Mrs. Denis lived near Swami ji for about 13 years, took cassette records of a lot of books but have not so far been able to produce any book of value excepting one which contains three chapters copied from a book published in Swamiji's life time in Kashmir and a fourth chapter which seems to have been written with the sole purpose of claiming that their son Viresh is the only heir of worldly properties of Swami ji. It is well known that all disciples of a saint are the real heirs of his spiritual property. The worldly belongings are insignificant for them.

Mr. Jaidev Singh a great scholar and writer also came in the last years of his life to study Kashmir Shaivism. He had translated into English the following great books on Kashmir Shaivism:

1. Pratyabhijna Hṛdya of Kṣemaraja
2. Shiva Sutras with commentary of Kṣemaraja
3. Spanda Nirnaya with commentary of Kṣemaraja
4. Vijnana Bhairava
5. Last but not the least Para Trinshika translated (after reading from Swami ji) but published by Ms. Bettina after the death of Shri Jaidev Singh.

This humble writer was privileged to attend all the classes: (1) General Sunday classes (2) Classes held for Ms. Silburn when she would be in Kashmir (3) Special classes held once a week for the sake of Mr. John Hughs & Mrs. Denis and their friends. (4) Classes for Shri Jai Dev Singh and have had the priviledge of recording most of such lectures on cassettes. This attendance in all the lecture classes of my god, my lord Shiva, my Gurudev Shri Ishwar Swarup, was the greatest benediction afforded to me by my Gurudev, besides allowing me an hour almost every week for yoga practice in his presence. I had also the great luck of being allowed to build a small hut by the side of Guru Dev Ashram, where I lived every summer for about sixteen years and also was helped by Shri Sharika Devi ji and Shri Prabha Devi ji in going through books, I did not have the opportunity to attend when taught by Swami ji, due to my absence from Kashmir in winter or for other reasons.

During my time in Kashmir living in the above noted hut Shri Swami ji built a temple for Shri Amriteshwara Bhairava and also dismantled a single storey old hall and built a large 2 storey building in the premises. It was also my goodluck, as I had a chance of doing my little bit for these two complicated constructions as a retired in civil engineer that I was before retirement in 1966. Needless to mention I was lucky to do some work when the present 2 storey Ashram building also was under construction in 1962-63. I apologize for going astray but having written in the name of Guru Dev I am not editing or deleting anything. My pen has advertantly or inadvertantly chosen and forced me to write what Swami ji wanted.

I have written all this to show the greatness of my Guru Dev and his contribution to the propagation and spread of Kashmir Shaivism. I want to write a lot more but let me close this subject here.

Yes Sir, this chapter of Swami ji's story came to an end with his last breath in October 1991 only seven months after the death of his greatest disciple Shri Sharika Devi ji who had in her own right reached a very high level of spiritual height under Guru Dev. In fact everybody who has bowed at their sacred feet even once has achieved the highest. This is my confirmed opinion expressed in His presence and not denied by Him. His lossship would sometimes ask me if this was my real faith and I confirmed then and now. Yes sir, any one who has touched the lotus feet of Ishwar Swarup Swami Lakshman Joo Maharaj is an emancipated soul.

My Gurudev's greatness does not allow me to leave him and retreat to the main subject. Here I prostrate before him to allow me to reach the subject in hand now.

Yes sir, I was writing about Pratyabhijna, recognition. Recognition of one's own self. What he is, where has he come from and what is his purpose in life? These questions baffle everybody all the time. In fact all efforts, all actions, all thinking, all praying has got one and the only purpose of understanding this unknowable inaffable Self. Shaivism calls it अनुत्तर; some thing which has no answer, it is peerless. It cannot be seen but it is something existing all the time as consciousness. It does not require to be proved as the very fact of its clear existence is automatically proved without the help of any poor proving argument or agent. As long as Consciousness is there, the body of earthly elements is a perfect living creature. As soon as consciousness gets blurred we are called senseless, mad. The body gets tired, wants rest, sleeps but with all consciousness knowledge safe in its store. As soon as consciousness leaves the body, it is dead. It starts to decay, gets rotten, insects outer and inner start preying on it, and the nearest and dearest one's, including all society, gets anxious to dispose off the body in fire or under earth. Without Consciousness the body is not only a burden but a nuisance rotting material.

What is this consciousness that keeps this earthly body alive, up and doing, thinking and scheming, understanding and making others understand. The very construction of the word *'consciousness'* shows that because of the

suffix *"ness"* it is a quality of something. The quality or qualification of a thing is nothing but its energy, so "consciousness" is the energy and quality of "conscience", which is its master and ruler. "Consciousness" and "conscience" are inherent in all "sentients" but in degrees as has been shown in the start of this note.

We see that though variable and in degrees conscience and its attribute—quality-energy consciousness exists in all living beings. Even an ant knows how to collect its food and where to store it; just as man manifests ways and means, to earn his livelihood by different ways of consciousness, and then knows how to protect, increase and store it in godowns or banks. The instinctive quality conscience is similar and the same.

These two conscience and consciousness cannot be separated, just as heat cannot be separated from fire. The qualification emanates from what it qualifies, so conscience the source is the origin wherefrom its river of consciousness, its energies, come out.

We have so far reached this source of energy in its individual form (individual consciousness). Let us see a bit further. All this universe is energies of multifarious types but all these energies (like the consciousness of an individual) seem to be coming or rather must belong to some great source, as they are all properly governed and controlled, so much so that when atomic energy was revealed to man, he feared that the chain reaction of the fission of a single atom, would engulf and bring the whole world into conflagration. But no, the terrible atomic energy also has its limits, no doubt enormous but limited by Mother Nature - God the master ruler of all energy, to the destruciton of a small place like Hiroshima or Nagasaki. Immediately on release by this notorious rebel of a man, God controlled them and limited the destruction to the limit, willed by the Master, not by man. So we come to the conclusion that there is a governor, a controller of all forces in nature, who utilizes the energy just as He wills to the best use of man and is called God, Shiva, Ishwara and other innumerable names. Even Hiroshima and Nagasaki were a part of His plan to stop the terrible destruction and bloodshed of war that was going on in the world not only then but many times again and again. But now we have seen more than half a century of warless life on earth, as a result of atom bomb discovery, excepting small tiny skirmishes of local trouble.

Yes sir, Let us think of this conscience and consciousness, which by now we have understood is not only individual but universal also; the consolidated universal conscience is God consciousness, and its master Conscience as God or any other suitable term— Shiva, Vishnu, Brahma, Buddha, God, Allah etc. etc.

From our personal experience we know that this conscience (consciousness) is absolutely free to think and act as it likes. This is the absolute sovereign and free God to think and act as He likes even as an individual is absolutely free to think and act as he likes. This is His Lordship. This is His Godship. This is His Consciousness, His Sovereign Energy; the source, the Matrix of all his creation, individually and collectively.

This conscience in addition to its qualification (freedom of all knowledge and action) has two marks of identification. (1) It shines (shows itself) by itself. No help is required excepting thinking capacity, to understand its shineful radiance. So shinefulness and the thinking power are its marks of identification. Every thing in the universe shines. Even insentients tell those with thinking power what they (sand, grass, sun, moon etc) are. A particle of sand tells the thinking power that it is sand and can be used as thinking power thinks fit. So on and so forth.

So it is established that this conscience God Shiva is (1) absolute in itself to *think* and *act* as it likes (2) and its mark of identification is its a shinning power, *radiation* प्रकाश, and *thinking power* विमर्श.

(1) *Shining power radiance* is omnipresent in everything sentient and insentient and *thinking power* is complete in itself in God and exists in degrees in all living creatures more in man and least in small microscopic beings. No body can deny these factors which go to prove that the Master of all this conscience *does exist and governs all consciousness* which is present in the world as different forces and energies.

(2) This conscient personality God is free to know and act; and

(3) Shinefulness Radiation and thinking power are His qualities of identification as God and also as any other being (in limited form). This Master is God proved by itself. This is the reality behind everything whatsoever. He is inherent in every possible thing (even nothing) in nature. His inherence is proved beyond contention by the possession of radiance in everything by dint whereof everything (even nothing) declares to His thinking energy what that thing (or nothing) is.

He creates, maintains and destroys. All these three actions are complimentary and supplementary to each other. When he creates he has to maintain and unless he destroys the old creation in due course of time, new creation will have no space and it will rot. He through his grandeur is, *infinitely finite, limitlessly limited* at the same time.

He is one, peerless, and his personality, identity consists of conscience which carries consciousness as its quality and qualification and all other energies follow.

In his oneness He is complete in Himself and thus does not lack anything to desire for. He is independent and full of all energies. He is formless, changeless ineffable. The brimming over of his energies cause him to visualize His own self.

This brimming over of His energies is what in Sanskrit is called his चितशक्ति (conscient energy) and ineffable (cannot come into the limited speech of the limited personality—man limited by Maya and its attributes.. Its qualification consciousness is called चैतन्यता or चैतन्यं or चिति which energy is His life, the life of the world individually and collectively. Actually He Himself is चित् conscience forms

the origin, which is beyond comprehension and is the microsm विश्वतीर्न beyond the world. On its movement (motionless movement) (Spanda स्पन्द) when it becomes consciousness (चिति) चैतन्यता, form चित्, the movement is complete from विश्वतीर्न (beyond the world) to विश्वमयता, the world in essence in form and in action. He God of चित् form (चित् latent supreme energy) through his sovereign will consciousness turns Himself into the universe. With His free will He draws the great artistic world, becoming the convass, the artist and the art all only Himself. This is His splendour. The transformation takes place in five stages. चित् is the original stage it is represented by the initial sound of all alphabets अ = A = Alpha. The world starts from this sound अ. All alphabets in the world start with this initial (Anahat shabad touchless ineffable. An ever existing sound without which no other sound can be pronounced). Even babies start their life speach with this sound अ. This is चित् शक्ति of god holding all other energies and the entire universe written itself, like latent heat in matter, physically. When God who is formless, changeless, ineffable and even thoughtless so far, has the realisation of Himself as this चित् shakti conscience again and again. The अ+अ+अ becomes आ and he feels ananda, his own blissfulness, as His own self. Here his sovereign indepandant energy transformed itself into consciousness, or in other words his sovereign independent energy becomes will to see this ananda, bliss, and it becomes इ. When this will इ became strong and confirmed, it becomes ई. The strong and confirmed will, visualizes and developes into the scheme of the universe. The development of will became उ understanding, plan of the universe. The confirmation of this knowledge energy becomes full complete plan of the, to be world, and this confirmed knowledge assumed the shape and sound of ऊ. On full visualization of the universe with all its intricacies and woes, worries and troubles are evident even in the sound "ooo". Seeing this terrible picture, Lord Shiva even gets terrified, and tries to stop here. He in this condition is called अनाश्रित शिव will-less God. He stopped, did not go ahead, and became the non acting four vowels of ऋ ॠ ऌ and ॡ.

But for the energies of अ conscience, चित् Blissful consciousness, आनन्द आ, Initial will इ, confirmed will ई, initial knowledge उ, and confirmed knowledge ऊ, there should have been no more activity, and the will-less god would be imprisoned in his will-lessness for good. But no a push developed with चित् अ and initial sovereign will इ, and developed into (AE) ए, the first step of action. A second push from आ Ananda and confirmed will ई, brought him to the II stage of action, in the form of Aiy ऐ. The third push by चित् अ and initial knowledge उ, अ + उ developed into ओ O, the advanced third stage of action. A fourth final push by Ananda आ and ऊ confirmed knowledge forced him into becoming complete energy of action in the form of औ. but all this forcing even was his own original sovereign power transformed into will power. There is no scope for anything else, in reality to the power, energy of action. In short, conscience become consciousness (bliss), to Will, to knowledge and then to Action (worldliness) nothing else existed, exists or can exist. Lo God became the total energy of action and

expressed अं usually represented by a single dot bindu representing His own self. On this he was glorious and happy and expressed आः represented by the initial dot bindu, of अं and added one more bindu and he became all happiness आः "Aha" incarnate, in the form of two bindus dots, drops called Nada. One bindu represents Shiva (male) and the other one Shakti (female) for further creation of the Universe.

Yes, here the creation of the world starts. The five energies from चित् (conscience) (चैतन्यं) आनन्द Blissful consciousness to will, इच्छा, knowledge ज्ञान to क्रिया action, have grown to overflowing. God at the first movement (स्पन्द) from चित् to आनन्द became conscious of his own self Aham "I" अहं, of by his own आनन्द (bliss) and desired, to see his full bliss and blissfulness the Self. This was opening of his own eyelashes, which meant all the three energies of will, knowledge an action, unfold themselves as the universe as his own conscience. चित् develops through आनन्द = Bliss into his इच्छा will, knowledge ज्ञान, and Action and become the universe. This is clear from the Vedic aphorism, एकोहं बहुस्याम I am one (single) and am becoming many and also सर्वं खल्विदं ब्रह्म. All this is only ब्रह्म the bigger than the biggest. In Istam God uttered Kun - K will - U knowledge an N action and the world came into existence. Before creation of the world He was only conscience (ideation) as material body came into existence only after He uttered "Kun" (If he has a body).

When He opens His eye the world becomes (His own concrete identity and when He closes the eyes the World merges into Him and this opening and closing of His eyes goes on and on every moment.

The energies of God, flower, emblossom into the world, and just as energy of heat cannot be separated from fire, so the world made out of Gods energies cannot be separated from Him collectively or separately.

This is what Lord Krishna means by यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति. He who sees Me God (अहं) in everything and sees everything in Me (realizes the reality) and thereby never forgets Me and I too never forget him. (he is one with me).

So we have seen in a realistic rational way how God Himself whom we call by so many names, and Shiva, Allah, God as a special name, became from inaffability to sound from formlessness to form and from changelessness to changefulness.

In short this phenomenon is so well described in the sentence शिवेव गृहीत पशुभावः.

Lord Shiva himself took on himself the garb of a beast (of all kinds and man in particular in whom he put the powers of understanding and revealment in totality. This is evident in the great Bible whcih says "God made man after his own shape." God is only conscience (before creation) and he made man with conscience and its attribute consciousness. He put total conscience and consciousness into man, who is in His shape in this respect is like Him completely. Shape, sound and changefulness came only at the time of creation, and these three also came in his own identity transforming Itself into personality. So Shiva and Shiva alone whom we

have identified as conscience became the universe in total and individual. This is His greatness which no body dare question. As soon as we see this great universe in total or individual form we all at once automatically realize the maker and admit what He is. Even those who say they do not believe in Him first believe in Him for the sake of refuting his being. We can refute and derecognize only something which we first understand and recognize.

So we have seen Shiva (God) is Vishvatirna विश्वतीर्न beyond the universe and विश्वमय, He is made of the universe and the universe is made up of him, like saltishness coming out of a salt stone and the salt stone being composed of saltishness alone. He is conscience which causes consciousness of the world and it is consciousness which implies and proves conscience. In Shaivist terms it is expressed Shiva and his energy Shakti being one and the same thing. Shiva is Shakti. His energies soldified as universe and the universe made up of his energies is He-God-Shiva, Shakti and nothing else and Shakti (consciousness) is Shiva conscience. Even Chambers dictionery has not been able to differentiate and discriminate here between conscience and consciousness. Finally upon my conscience is means "truly". And we know "God is the only real truth).

The question arises, why then the multifariousness? Why then good and bad? Why then happiness and woe and worry? Yes sir, this is the real question and unless answered to satisfaction all arguments enumerated above, (so far) fall flat.

We have asserted that Shiva (God) is free sovereign will. With consciousness coming to ineffable, unchangeable and formless conscience the feeling is of "I" Aham which is the basis of all activity I do, I possess in future. Now this assertion of I (Aham) is the seed of the universe and persists in all mankind (creation) all over.

This is the seed of the ego the stain called Anowmala.

This seed is the original stain मलं अज्ञानं इच्छन्ति संसारांकुर कारणम्. The stain of ego (Anowmala) desires ignorance (Mayi Mala) which is the cause of the samsara the coming and going world the Karma Mala birth and death.

The seed "I" of Anowmala on becoming Purusha grows into a stem of Ahamkara (egofulness) with two strong branches of Mayiya Mala the stain of possession and delusion, I possess; and Karma Mala the stain of I do. Shiva covers His pure self conscience through the three covers (stains) of consciousness of I am, I possess and I do. Lord Shiva becomes a bound personality. His own knowledge, possessinal delusion, becoming his binding (ज्ञानं बन्धः) a beast, a worldly man but not by any external force, but only by his own free sovereign sweet will. He forgets his original peerless single flawless self, and becomes a man, bound in the clutches, of maya delusion, with its (Mayas) five coordinates of Art, Time, Affection, Ethics and Ignorance, and does not consider Himself SHIVA but the body. Forgetting His self Shiva, considers himself a worldly personality.

This phenomenon of transformation of Shiva takes place in a systematic process as under, as explained by Shaiva Shastras as तत्वाध्वा categoric system.

1. Shiva (चित्) conscience is one with

2. चैतन्यता शक्ति energy consciousness. देवी Devi Matrix of the Universe.

3. Here the ego "I" is born out of the consciousness which pronounces "I am this". I (as Shiva) is predominent and this the world is obscure, in the will only. This is the stage of Sadashiva. The will is the ruler here. The stage is called Mantra Maheshwara. The superlord of the Mantra "Aham" "I" called Mantra Maheshwara.

4. The second step takes place when will transform into knowledge. The plan of the world comes into contemplation and Shiva feels "This (world) am I. Here the emphasis is on this, the to be world". This is the world of knowledge (ज्ञान). The ruler is Mantreshwara the Lord of Mantra.

5. The next step is Shudh Vidya. Action has started. The conception is "I am I, This (world) is This" with equal emphasis on both. The energy of action is the ruler, who is called Mantra 'I' Aham. This is called the stage of Shudh Vidya. Upto here the journey is said to be through pure passage Shudha-Dhva (शुद्धाध्वा) and here onwards the mayic, stained worldly passage.

The sovereign free energy here transforms itself (by personal will and design of Lord Shiva only) to Maya (worldliness) and he forgets his pure complete identity and becomes a limited personality with the shackles of worldliness and its five complimentary attributes - To translate Maya as delusion is the greatest insult to God Lord Shiva and his sovereign power (maya) God consciousness. Maya means measurable - Whatever can be pointed out, seen and observed in concrete or abstract form is thus measurable and that is Maya. As we have seen the sovereign independent power of Lord Shiva became his will, knowledge and action. These three transformations of the Lord taken together is Maya. So Maya is nothing but the Sovereign independent Will energy of Lord by dint of which He chooses to conceal Himself from Himself on becoming a purusha personality. He not only coneals His own Self from Himself as a personality but once again utilizes the same sovereign free independent energy Maya to reveal Himself to Himself as Shiva. This is His playfulness. This is His wonder. This is His splendour known to Him and understood fully by Him alone. No one but He creates, the play and enjoys. There is no good, no bad, no happiness, no woe. All is His own play of blissfulness and nothing else.

So after the stage of Shuddhavidya a great transformation takes place. Maya takes over its own self, the Lord with the help of its five complimentary attributes: Art, time, affection, ethics and (false) knowledge.

We have explained Maya above:

(1) Art कला is the binding which forgets omni potency and omnipotence of Lord Shiva and reduces personality to a single limited artisan or technician or even a good or bad householder.

(2) Time काल where the eternal (God) becomes of limited time as a person of so many years or bound to do something at a particular time and reach ultimate death.

(3) Effection (malice). The Complete looses His fullness and starts desiring only particular person or objects.

(4) Ethics. Lord Shiva looses his freedom to do as He likes and is bound by rules and regulations of society to work and act in only particular ways as a personality.

(5) Wrong (false knowledge). Lord Shiva does not consider himself omniscient, omnipotent anymore but knows only certain things that too wrongly such as forgetting his all conscience and consciousness and considering himself only as a body made up of earth etc. (five elements). Body consciousness is the real wrong knowledge.

Now we have so far seen eleven categories (1) Shiva (conscience) (2) Shakti (His supreme energy of consciousness) (3) Sadashiva who knows himself as Shiva but is slightly inclined towards the universe (4) Ishwara who feels Shivahood and worldliness with stress on the world (5) Shudh Vidya (true knowledge) I (Shiva) am all this universe and the universe (worldliness) is only me (6) Maya (7) कला Art (8) काल Time (9) राग Affection (10) Ethics नीति and (11) अशुद्ध विद्या (false knowledge).

Here comes Purusha - personality who is none other than Shiva Himself but bound (by dint of his free will) into the personality of a worldly man with three stains of (1) ego "I am" (2) "I do" and (3) "I possess".

(1) आनर्वमल the staining cover of ego. (2) Mayiya Mala the stain of possession (3) Karma Mala the stain of doership.

I am somebody other than God, with my own identity, with capacity of doership (कार्ममल) staining cover and the false notion of proprietorship (or lack thereof), thinking whatever is in my possession, is mine, not belonging to Shiva, although he knows fully well, that tomorrow or a few more years hence he has to go, as empty handed and naked as he came at the birthtime.

In addition to this threefold ego of being doing and possessing, he is in the six shackles of Maya and its attributes, forgetting his oneness, purity, unchange-ableness and inaffableness. He sees duality all around, beautified by malice, aversion, joy, woe and trouble.

The personality पुरुष finds himself with three qualities of सत truth, रज action and तमः darkness caused by happiness, trouble and delusion.

These three qualities are kept balanced by nature प्रकृति and then life moves on.

Here determinations, desire and delusion cause three internal (subtle) organs of intel-

lect, mind and ego, बुद्धि, मन, अहंकार are the forms taken by Lord.

Side by side come into existence, in form of the five organs of conception : ears, skin, eyes, tongue for tasting and nose for smelling as also five organs of action tongue (for talk), hands, feet, excretion and procreation (does he become).

These organs must have something to deal with and nature (Lord Shiva dons the form of five feelings of sound, touch, sight, taste and smell.

These feelings become concrete objects in the following ways :

Sound = Akasha = space (note this is a concrete material. All measurable waves of sound light, radio etc. etc. pass through it and are measurable.

Sound + touch = air

Sound + touch + sight = light=fire

sound + touch + sight + taste = water = liquids

sound + touch + sight + taste + smell = earth,

solidity

These subtle and concrete materials are all nothing but facets of Lord Shiva and we have now come to (36) thirty six categories of his formation as under:

English name		Sanskrit	Represented in alphabet a
(1) Shiva	=	शिव	अ
(2) Shakti	=	शक्ति	आ
(3) Sadashiva	=	सदाशिव	इ ई
(4) Ishwara	=	ईश्वर	उ ऊ
(5) Shuddhavidya	=	शुद्धविद्या	ए ऐ ओ औ
(6) Maya	=	माया	व
(7) Kalā	=	कला	य
(8) Kāla	=	काल	य
(9) Attachment	=	राग	र
(10) Ethics	=	नीति	र
(11) Avidya	=	अविद्या	ल
(12) Purusha	=	पुरुष	म
(13) Nature	=	प्रकृति	भ
(14) Intellect	=	बुद्धि	ब
(15) Mind	=	मन	फ
(16) Egofulness	=	अहंकार	प
(17) Ear			न
(18) Skin			ध
(19) Eyes			द
(20) Tongue (taste)			थ
(21) Nose			त
(22) Tongue (for talk)			ण
(23) Hands			ढ
(24) Feet			ड
(25) Excretory organs			ठ
(26) Organs of Procreation			ट
(27) Sound			ञ
(28) Touch			झ
(29) Sight			ज
(30) Taste			छ
(31) Smell			च
(32) Akash (space) ether			ङ
(33) Air			घ
(34) Fire			ग
(35) Water			ख
(36) Earth			क

We must note that all these thirtysix categories are nothing but facets of Lord Shiva only. This is a garland. Remove one piece and the other thirty five fall to uselessness. Every category carries all the other thirtyfive within itself.

This is the whole universe of thirty six categories (of Lord Shiva) woven with great artsmanship. He alone is the artist, the material and the final edifice.

Without real entanglement He seems to be entangled in it. There is no entanglement as He and He alone is the individual and the total universal picture. The entanglement comes when one considers himself something separate by himself and then in separation the individual feels he is bound up in the six shackles of Maya and stained - lowered made miserable by the three stains. (मल).

All this entanglement is imaginary as in reality all this is nothing but God Lord Shiva in his own multifarious forms बहुरूपः and the shackles and stains looking as harmfulness also are only his pleasure, and Self. Nothing other than Him can exist.

As long as one feels separate and influenced, covered by the three stains he is in trouble. Let us try to find out how to get free and realize our own true Self Shivahood. In short how to get rid of the dark covers of the threefold stains to recognise and realize our own self and be perpetually happy and blissful, one with Shiva.

Yes sir, we have got to crack a very very hard nut. We have seen that the six shackles Maya and its five attributes are a part of the garland that is universe. We have already noted that these very shackles understood, realized and properly visualized and utilised can be the stair for upward journey of our individual personality to Shivahood without breaking the garland, that, this totality is. This will be shown in detail later on.

So the only impediments, barrier in the realization of individual self, in its true form of, oneness with Shiva is the triad of the three stains. That is why Shri Utpala devacharya also prays in clear words in Shloka No.2 of the 13th chapter.

अन्तरप्यतितरामणीयसी
या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे।
तामपोश परिमृज्य सर्वतः
स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय॥ २/३॥

Deep very deep, inside me, My Lord
Subtle impurities concealing you, do exist
Dispelling them fully from all sides,
Kindly reveal your (my own) pure identity.

This shloka explains in detail the terrible actions, on an individual, of the three stains and also says, that revealment, realization of self is possible only, on complete dispelling of all the three stains.

How to dispel such great forces inherent in us from times immemorial from myriads of janmas and really subtle and deep in us?

As we know they are three. Let us examine them. In fact the reality, that one has become aware of them and is feeling the necessity to get rid of them is the greatest

benediction of Lord Shiva.

We have seen his five energies (चित आनन्द इच्छा ज्ञान क्रिया) (1) conscience (2) happiness, bliss of conscienceness, (3) will (4) knowledge and (5) action - we have seen the flowering of these five energies into the universe in detail.

Let us see now; what his last item of action is.

Yes sir, he acts in five ways :

1. Creation
2. Maintenance
3. Destruction
4. Benediction, and
5. Curse

The first three actions are dependent on cause and effect, reason and result. 'As you sow so shall your reap' - This is the Theory of Karma. These three have started, with the so called big bang, and will go on till eternally. The big bang, is also only a supposition and actually this world in its multifarious forms is a never starting never ending phenomenon as a whole. But at the same time, a new world comes into being every moment, and an old world gets destroyed every moment. This is God's Lord Shiva's twinkling of His eyes : Opens - makes the universe; Closes — merges it into Himself. The person who sees the hand of Lord Shiva (God) in this creation (maintenance) and destruction is a blessed soul and one who sees his own personal hand or any other human hand in any action whatsoever, is a cursed being. In Shaivism, this theory is called the theory of five actions, of Shiva is पंचकृत्यविधान.

For dispelling the three stains benediction (अनुग्रह) of Lord Shiva is the first requisite and we have to hope and only pray for it. On grant of benediction by Lord Shiva, one has to make efforts for dispelling the three dirts. In fact the proof of benediction is to know the three stains and to girdle up "उद्यमो भैरवः" for dispelling the three stains. These can go in the reverse order of there comming. The Karma Mala can go first. Mayiya Mala can follow and root of all the three can go after great perseverance, great effort determination, belief in and devotion to God Lord Shiva and His representative the preceptor Guru.

Karma Mala - What is it? This is the false notion of a man that he is the doer of worldly action. In short Karma Mala is longing to do good or bad. In Parmarthasara, Shri Abhinavagupta says in Sh.54

लोकव्यवहारकृतां
य इहाविद्यामुपासते मूढाः।
ते यांति जन्ममृत्यु-
धर्माधर्मार्गलाबद्धा॥ ५४॥ प. सार

I cm doing the worldly (trans) action
He who keeps on worshipping (Believing)
the false conception (knowledge)
He attains to brith and death,
Bound in the impediments chains, virtue and
sin (right & wrong)

The first part of the shloka says that to believe - nurse (adore) that a man is the doer of worldly actions is false. How? We have seen this world is a predestined world

dependant on cause (actions, beliefs and desires of so many last lives) and result the luck and therefore the actions of present Janma). This is one way. The other way is that Lord Shiva God alone is the creator, caretaker and destroyer of the universe. This being so, what can a petty body made of five elements do. We know that on birth our nourishment is already there in our mothers' breasts and further on in the stores or pockets of our parents. The environment in which individuals are born is not our doings and even in further working, life goes on happening as it has to. *Some unknown force goads us to go, as it thinks fit.* Some actions bear fruit some do not. The results of our doings are not in our hands. But still on successful and lucky results, we boast *"I have done it"*. And when, we are not successful, things do not go to our liking. We do not blame ourselves for our failures but take refuge in *bad luck and Gods doing* at that time.

This is how we deceive our ownselves. If we had seen Gods hand in success as well as failure, no responsibility (sin or piety) would fall on us. But all saying wrongly again and again. "I have done this or I will do this" and that so on and so forth causes us to be responsible for our doings (good or bad) and this being the result of our desires (वासना) only we are caught in the clutches of birth and death. Till Lord Shiva's benediction gives us sense to understand that the real doer of all action is, Mother nature and Lord Shiva and we are only pawns in their hands. The Lord has already destined to happen whatever happens and we are only निमित्तमात्र, show pieces, in the matter, as Lord Krishna tells Arjuna, in Gitaji. When we fully understand and realize this; we are a soul free from future birth and death and in Shaivist terms have reached the stage of Pralaya Kala where the Karma Mala stain has totally gone. There is no more birth and the soul rests till a new Kalpa takes place. When all such souls come out for further progress or decline.

The attainment of this stage is the liberation desired by other sects and religions but not in Shaivism where the goal is becoming one (merge in Lord Shiva nothing less nothing more). This is possible in this very janma by destruction of all the three stains by grace and benediction of Lord Shiva.

Let us consider Mayiya Mala (the stain of Maya) now. The root cause of Mayiya Mala is the conception of duality भेद प्रथा- Forgetting that everything is Lord Shiva, conscience and nothing different from Him and one thing is good and another bad (for us).

To understand this let us consider how we understand things outside.

When we see a thing our thinking power goes out through one or all of our thinking organs. Observes the thing. Brings back a report (a graphic report) of what the thing is like, on receipt of the impression, mind and intellect tally this graphic report with the existing graphics on the चिदाकाश the field of conscience. On comparison they decide what this thing is and we take a decision for dealing with it in a proper manner.

It means the outer object merges with our field of conscience first and then alone we deal with it. In simpler words it becomes not

only a part of us but one with conscience. So everything in consciousness, (the energy of conscience) does become, our conscience first, and then we deal with it.

One name of Kashmir Shaivism is अन्तरार्थवाद. Everything exists in the inside (conscience). So we see that the outerworld is only our innerworld projected outside. This is a reflection प्रतिबिम्ब but without बिम्ब the object reflected. This is what Guru dev would very often express.

We have come to the conclusion that everything inside or outside us is nothing but the inside of us. Our conscience Lord Shiva and nothing also. When so, where does duality come from. It comes from our bad vision wrong understanding, feeling short etc. It has been truly said :

प्रकाशमाने परमार्थभानौ
नश्यत्यविद्यातिमिरे समस्ते
तदा बुधा निर्मलदृष्टयोऽपि
किंचिन्न पश्यन्ति भवप्रपञ्चम् ॥१॥

When the sun of spiritually (real wealth) shines
All possible wrong knowledge
(false conception) gets destroyed
Then the wise (become wise by destruction of
false conception) with flawless clean eyes
See no worldly contradictions - disturbances.

Shining of real wealth of spirituality means when one realizes that all this is nothing other than Lord Shiva (conscience). Which one Himself in reality it is.

So we see (realize) that all this is nothing but Shiva the fructification of his initial will, एकोहं बहुस्यामः. If such is the case all this is He. How can it be distributed in parts.

The opening verse of Upanishad was very often quoted by our Gurudev.

ईशावास्यं इदं सर्वं यत् किञ्चिद जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्वित्धनम् ॥

He would explain all this world sentient or insentient whatever, wherever it is, is the dwelling, house (therefore the property) of the Lord Shiva. Enjoy (put to good use) whatever he has given to you and never never covet others wealth opulance (Though it belongs all in all to Lord Shiva).

सर्वालयं सर्व चराचरस्थं says yogiraj in the opening verse of Parmarthasara)

Last but not the least Lord Krishna says यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति. He who sees me in everything and everything in me.

We came into this world absolutely without anything and after some time go empty handed.

It shows that the maker of the world wants to maintain us in a particular way, sometimes opulant, sometimes recluse, sometimes beggarly as He wills according to our past karmas and His will. So where does anything exist or not exist, as ours, (may be the man has made rules and regulations to save bickerings and blood shed for its temporary distribution) but in reality all this belongs to Lord Shiva God. Where does the notion of "I possess" or "I do not possess" come from? This false notion of dualistic possession creates pride, hatred, false talk, robbery and what not. So this notion is

the greatest stain most difficult to be washed off. We are not required to throw off what we have got. We must not get proud on account of what He has thrown at us nor should we get depressed and envious on seeing others opulence. We should possess the wealth of satisfaction and devotion to Lord for his benevolence in material, moral and spiritual bliss, for as much as he has given us. Possibly what he has given us, is more than enough, on account of his responsibilities, to the whole universe, and surely on account of our limited capacity, to tolerate more, and we must remain contented, with what he has thrown at us.

It is very very difficult to get rid of this stain of possession and those great saints who succeed here go very high into Vijnana Kala stage. They go above Maya into Mahamaya on to the first step of the true sacred path and their further progress towards oneness with Shiva is guaranteed by Shiva Himself as there is no dualistic conception in them now.

Now comes Anowmala, the stain of ego. This stain of ego has the seed in चित conscience becoming चितशक्ति चैतन्यता feeling the bliss, charm, happiness and desire to enjoy, its own happiness. It means he feels some thing short. Upanishads say

पूर्ण अदः, पूर्ण इदम, पूर्णात पूर्ण उदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण आदाय, पूर्ण एवावशिष्यते।

"I" he is complete. This is complete. Complete came out the complete. Complete merged in the complete and what remained is complete.

This means the विश्वतीर्ण (Shiva) is complete. विश्वमय; (Shiva) as this universe is complete, in itself, in part, and as a whole. He has forgotten his पूर्णता completeness, by his sweet sovereign free will, on purpose, to see his own splendour. He has manifested his splendour as his own लीला (no exact english word) amusemental sport (is the nearest word) let us call it Play "with a capital".

This Play is the universe manifested by him to see his own splendour, but alas in the process the completeness is forgotten, (not lost) and the desire to reach this completeness, once again is called Anowmala. By definition it seems the most uplifting phenomenon, which it actually is, But in worldly action this is the real stain, desiring ignorance, and resulting in coming and going, birth and death of samsara. Mayayi and Karma Mala, so scriptures say:

मलं अज्ञानं इच्छन्ति संसाराङ्कुरकारणम्।

Anow Mala (forgetfulness of self and its grandeur) desires ignorance Mayiya Mala the root cause of samsara Kārma Mala कार्ममल.

So feeling short of Shivahood the completeness and taking this body (with breath), organs etc. or (ones house, money, spouse, children and body as the self) is the real ignorance is Anowmala. We forget the real self आत्मा and take अनात्मा (things not the self) as our self.

This is the ego which makes us feel superior (or inferior) by dint of our possession (opulance or lack of it) birth, caste, creed, occupation, nationality, country, city, village or even a good or bad portion (Westend or East end of London) of a city.

This is the greatest false conception in life but most difficult and at the same time most easy to destroy. सुलभं च दुर्लभम् च

परमार्थसार 39 says :

यदनात्मन्यपि तद्रूपावभासनं तत् पुरा निराकृत्य
आत्मन्यनात्मरूपां भ्रान्तिं विदलयति परमात्मा ॥३९

Dispelling the wrong conception that my self consists of the body (and it attributes) by one first, then the Lord by His benediction dispells the conception that he is the complete conscience but Lord Himself as the universe.

After reading this from Shri Gurudev when he explained this in detail this humble self wrote as under:

Harken Harken O Man
If you are wise
This is the quintessance
Of all scriptures
And the repeated words of the wise
The body, breath, senses and nothingness
The house, children, thy belonging and the spouse (whom you consider your self)
Are not you
They are all for themselves
And you too for only you
When you understand this
Realize this
Without throwing away any of it,
Holding all as a trust of the Lord
All that you call mine
Belongs only to the Lord,
Live like a lotus leaf on the water surface
Without wetting your body arms or face
The lord benevolent Shiva
Shall only then, bestow on you
His ever omnipresent shineful
Grace and glory, benediction.
Make you understand, realize that
All this open wide universe
Is nothing but you only you
This is the Lord God Shiva
This is consciousness - conscience
This is understanding
This is knowledge
And this is you
All one in a nutshell
And the shell also is you
Realize Aham अहं, अ to ह A to Z
It is you you you.

To get rid of this Anowmala one has to pass systematically through the stages of Shuddha Vidya, Ishwara Sadashiva become Mantra, Mantreshwar and Mantra Maheswara. Desireless "I" Lord of desireless "I" and the Super Lord of everything. After ascending these difficult and easy steps *one merges* in Shakti in fact Shiva Shakti as one.

It has been hinted that one has to utilize Maya and its attributes to achieve the desired. How is it possible let me try to explain.

Yes sir, Maya and its attributes are the stair stages of spiritual rise after which one has to travel the real clean path of spiritualism.

As we have seen Maya is not delusion. It is the supermost power (energy) of Lord Shiva. This energy is absolutely sovereign and becomes the, will knowledge and action of Lord Shiva. So on the return journey the first step is action. This means to go up, is based on good action. It is called Anowpaya and Kriya Upaya. Before one starts on this journey establish-

ment is ethics (Yama and Niyama) of Patanjala yoga are prerequisits for further success.

After establishment in ethics the spiritual journey is of three types : (1) Physical (2) Mental (3) Conscient

The technical terms of Shaivism the (1) physical is called आणवोपाय = physical bodily means path of action (2) Mental is called the शाक्तोपाय = the means of thinking power the path of knowledge and (3) conscient one is call the path of will शाम्भवोपाय and the fourth one is called तुर्या the fourth one is path where conscience and its radiance only exist, one is already at his goal.

In Anowpaya the yoga practice starts with awareness of breath, its centres turning points, inside and outside, awareness of other centres (Dwadashanta) of consciousness and awareness. The final being the consciousness of moving (स्पन्द) energy of Kundalini. Those are all means where body and its organs are concerned. This means Anowpaya (Path of action) is the door to the next means Shaktopaya where thinking power is the means. The understanding of the basis (speech through sentences, words and alphabets is one part. The passage of thought from परा conscience to consciousness पश्यन्ति (ideation) to मध्यम centre (formation of idea to वैखरी speech are four steps. One should understand this passage of latent thought to speech clearly. The motionless movement of thought power (from cognizance of one object to another one) the start and end of idea, thought and a lot of such Dharnas are help here.

We may categorize the actions of Anowpaya as daytime labours of man and Shaktopaya be compared well to the evening assembly of all members in the drawing room where all good and bad of the family is discussed and thought over. In the same way an aspirant thinks of himself and the world, Now comes Shambhopaya. Here the benediction of Lord is complete, no action is required, except awareness of the self "I" (desireless personality of Self). This is the stage where awakening means awareness of Aham "I", Dream means any other idea other than awareness of "I", and sleep means forgetfulness of "Aham", and fall into the Mayic state of humanity. Here a watch has to be kept on every word one utters, and wrong utterance can lead to the source of desireful ideas. Here Samadhi means the good (happiness) of mankind and conversely good (happiness) of the common man leads to Samadhi (full satisfaction) of the great realized soul yogi.

Unowpaya the fourth stage is the top condition of the previous yogi where he is one with his Lord conscience Shiva.

These are the three different means of attainment of self. In short

(1) Anowpaya means efforts involving body and its organs.

(2) Shaktopaya means mental development unminding the mind.

(3) Shambhopaya means conscient development caused chiefly by lifelong good, washing away totally of the three stains and last but not the least... Gods grace.

(4) Anowpaya is oneness with God.

In all upayas the real study is of ones own Self. It is worldly in three ways (1) प्रमाता = the subject (innerself conscience) (2) प्रमेय = the object (3) प्रमाण = Physical or other connection between the subject and the object. All the three depend on the first प्रमाता the subject the self the soul without whom the other two प्रमाण and प्रमेय cannot exist. So He the subject is the inner being, the conscience and has to be recognised, realised.

Within the spheres of these three upayas there are Dharnas modes of concentration. They are many in number. One hundred and twelve are enumerated in Vijnan Bhairava. Other than these Dharnas there are some special Dharnas. A Guru finds out through, his experience and spiritual thought, the special Dharna (mode of concentration) suitable for a particular aspirant or vice versa finds out what aspirant is fit for a particular Dharna. He initiates him in that Dharna. To quote some chief ones (1) Concentration on the point where awakening enters dream and dream enters sleep and its reverse (2) Concentration on the junction turning point (Sandhi) of inhale and exhale. This is the chief one described in detail in the sixth Ahnika of Tantraloka by Shri Abhinavagupta.

There is Dwadash Kali explained in detail by our Gurudev in क्रमनयप्रदीपिका. On the basis of the explanation in detail given in fourth Ahnika of Tantraloka.

The Dharna on Aham अहं and Mha महअ and on सौः Bija are explained in detail in Para Trinshika.

The Dharna of entry through awakening to dream and dream to deep sleep was once explained in detail in the class room by Shri Gurudev.

Here the aspirant passes through six stages of निजानन्द (personal bliss) निरानन्द (Bliss only) परानन्द (Higher Bliss) ब्रह्मानन्द (Vast Bliss) महानन्द (great bliss) चिदानन्द (conscient bliss) and जगदानन्द (Universal Bliss also called क्रममुद्रा reaches Systematic stage where the yogi is in samadhi and Vyutthāna altering for short periods. This is the final stage. He is one with the self and the universe at one and the same time. Self is the Viśvottīrṇa (beyond universe) विश्वोत्तीर्ण face of the universe is the विश्वमय (world) face of Lord Shiva so that the yogi is one with Lord Shiva seeing both faces simultaneously.

Dwadash Kali - These are twelve systematic steps of a yogi.

1. **Srishti Kali** - This is the first impulse of the universe as such one with Shiva. If a yogi can catch it firmly here. He has achieved. This is like awareness of astonishment that emerges on occurrance of an unexpected event suddenly. All connecting memories come to surface. The whole appears as one event in a nutshell. Awarance here is worth attention. This awareness when aroused at all times and noted can automatically lead to thoughtlessness with awareness, of "Aham अहं" only which is samadhi.

2. **Rakhta Kali -** Here the yogi sees the self in the world and its attributes separately. He is himself while doing any of his worldly jobs, but conscious of his "Aham" "I". He is involved fully but attached to himself "Aham" only.

3. **Sthitinash Kali -** The yogi has seen the world fully in all its spiritual expects but wants satisfaction. So he enters the yogic action of seeing the two horses inhale and exhale driving seventytwo thousand nadis of the body. He gets into bliss but wants to go ahead.

4. **Yama Kali -** This stage has two facets. The yogi comes into contact with Maya delusion. If he is able to follow ethics (नियम) rightly he goes ahead. This is the bright face of Yama Kali, the dark face brings down the yogi to worldly level as he fails to observe ethics strictly here. He is pulled down by desire of worldliness.

5. **Samhara Kali -** The Yogi who comes successful from the ordeals of Yama Kali receives full benediction of his Guru Dev here and as a results get free from all worldly bindings and chains.

6. **Mrityu Kali -** The Yogi may still have the pride if having done away with worldly feelings. At this stage he kills even this egoful pride and brightens up further. A peculiarity of this stage is that the yogi can digest huge quantities of eatables or drinks. It is Bairava who eats not the individual personality. Swami Ram Ji our great grand guru has had this stage for some time when his eating capacity was great.

7. **Bhadra Kali -** Here is an established yogi. He can make and unmake world as he likes. His talk is always truth, may be about past, present or future. What he predicts must occur even if it is irrational. He can make and unmake.

8. **Martand Kali -** The first four Kalis deal with the objective प्रमेय world. The first with its creation, second with its maintenance, third with its destruciton and the fourth for its final Anakhya stage (ineffable stage अनाख्य) form. Similarly the second four deal with the means of understanding; fifth with its establishment. Six its maintenance and seventh its finish, eight is its complete absorption Anakhya. The means of conception are the eight (five outword and three inward) organs (1) nose, tongue, eyes, skin and ears (2) Ahankara, Buddhi (intellect) and mind.

So this eight Kali named Martand Kali, burns all these organs of conception, as they have already become useless, with the removal of objective world with its ego and establishment of the yogi in his own

person of Bhadra Kali. The eight Martand Kali burns the organs of conception (not factually but mentally). This is the final stage of the means of conception प्रमाण.

9. **Paramarka Kali -** Now comes the four stages of प्रमाता establishment of the true self, free altogether of the प्रमेय world and the प्रमाण means of the conception.

   Ninth Kali is the opening of the door to realisation of self "Aham". This is its establishment it is called परमार्क काली. She throws forward her radiance for the realization of the "Self" clearly in total.

10. **Kalanala Rudra Kali -** Then the understanding of the self is fully established. This is the maintenance of the प्रमाण stage of the 12 Kalis, the name is कालानल रुद्रकाली.

11. **Mahakala Kali -** We have by now realized our ownself free of all bindings. But the idea of one last binding of *time* still remains. The 11th Kali cuts off this binding also. It is called महाकाल काली. The destroyer of Time the great. Here the Jewel of चिन्ता consciousness has been fully realized. This is the samhara of this fourfold chapter of प्रमाता subjectivity.

12. **Maha-Bhairav Ghorchand Kali -** Here is a fully established yogi one with his own self, Lord Shiva. The name is Maha-Ghorchand Kali. Maha represents the प्रमेय objective chapter Ghor the प्रमाण chapter of means, and Chand the third chapter of subjectivity प्रमाता.

I have tried to explain the 12 Kalis in very brief words. The details may kindly be studied from क्रमनयप्रदीपिका written and published by Shri Gurudev himself.

The description of Shaivism without explanation of सौः Aham अहं and Maha महा will be very incomplete. Let me take सौः first.

S-स represents the thirty one categories from earth to Maya in the rising order. One has to purify every one element and merge it into its predecessor and finally reach S स representing truth "सत्य" as the objective world of the thirty one categories is not false. *It is the true visible measurable Mayic face of Lord Shiva.* This establishes the last but one alphabet of the garland of letters वर्णमाला. The objective world is the flowering of three Shaktis Will, Knowledge and Action of God, Lord Shiva-conscience. We have seen earlier in the development of vowels that औ the fourteenth vowel represents the final shape of the energies will, knowledge and action. Thus the vowel औ in its short form is also called a Trishula form (trident form) with स makes सौ representing the 31 categories of Maya and the three energies of Shiva, 34 in all.

The final development of vowels is अः the joyful two bindus representing Shakti and Shiva. Thus adding the 2 bindus (dots) to सौ, it becomes सौः representing the whole cosmos rising from the world of 31 categories through the tried if will, knowledge and action com-

bined with 2 dots representing चित and आनन्द chit, conscience and आनन्द consciousness, Shiva and Shakti. The बीज अक्षर the seed word सौः represents Lord Shiva, Shakti and the Nara world in one go. This is the most powerful mantra and its greatness and greatness achieved by its *realization* is given in detail in Para-trimshika by Shri Abhinavagupta.

Aham अहं

We have seen earlier that Lord Shiva energies of चित् आनन्द इच्छा ज्ञान and क्रिया are concretised in the alphabet as चित् conscience अ, आनन्द bliss of consciousness is आ, इच्छा is इ and ई ज्ञान is उ and ऊ and after a gap of rest in ऋ ॠ, ऌ and ॡ the energy of क्रिया develops into ए, ऐ, ओ, and औ and all combined rest in self assertion of अं and joyfulness of अः represented by 2 bindus dots, drops representing Shiva and Shakti.

The conjoining of these two Bindus produces the world onwards as under.

क ख ग घ and ङ represent earth, water, fire, air and ether respectively.

च छ ज झ and ञ represent smell taste sight touch and sound.

ट ठ ड ढ and ण represent the fire organs of action and

त थ द ध and न represent the five organs of conception (cognition)

य र and ल represent Maya माया and काल and कला, राग, नीति and अविद्या and व represents महामाया. Maya in its upward journey. श, ष and स are called three Brahms the great ones शुद्ध विद्या, ईश्वर and सदाशिव and finally ह represents शक्ति Shiva. अ is inherent in all of them as radiance and no sound whatsoever can be pronounced without the help of अ. (Radiance of Lord Shiva).

So we see अ represents Shiva in the alphabet - Garland of letters वर्णमाला and ह represents शक्ति his energies.

As the whole world is the blossoming of Shiva through his energies it is represented by अ and ह joined together by अं a bindu representing personality. So अहं represent Shiva, Shakti and नर personality as a whole.

नरशक्तिशिवात्मकं त्रिकं. Thus the philosophy of triad त्रिक is represneted by अ Shiva ह energy Shakti and म् (the bindu) as man. This is प्रमाता the real subject reaching the stage of नर (man) the personality through his energy the swatantra supreme sovereign energy. So अहं which means "I" conscience in man. Everything in the world is revolving around this "I". Whatever action is taken is a contribution of I Aham. I am, I do, I have etc.

Spirituality revolves around the realization of this "I" अहं.

Shankaracharya defines Bhakti as awareness and thoughtfulness of "what I am and what I am not at all times".

So we see that the entire humanity is dependent on "I". The realization परामर्श of this "I" Aham अहं has been described by Shri Abhinavagupta in Paramartha Sara (quintessence of super opulance highest wealth) spiritualism as under.

After establishment of सौ in Sh. 45 as under —

शक्ति त्रिशूल परिगम-
योगेन समस्तमपि परमेशे।
शिवनामनि परमार्थे
विसृज्यते देवदेवेन॥

In this way the world of 31 categories (earth to maya) represented by "स" in conjunction with the three energies of will, knowledge and action represented by औ becoming सौ takes rest (refuge) in the final emancipation (विसर्ग) अः representing Shiva and Shakti becomes सौः and thus reaches Shivahood.

We have seen that the journey through अहं is from अ Shiva through energy ह to personality म. The return journey of म personality through the same energy ह to Shivahood अ is called म ह अ which is the same as सौः journey of स worldliness through the energy औ to Shiva-Shaktihood आः so सौः and म ह अ both represent the return journey of man to Shivahood through contemplation and concentration on the energy and other goddess Parvati Durga, Sharika, Devi Maya. Yes Maya the Svatantra Shakti most sovereign independent energy of Lord Shiva back to merge in Shivahood. I have noted this by the way, how it is Maya the Swatantra Shakti of Lord Shiva alone is helpful in reaching back from where we have come. The adoration of Shakti as Durga, Chandi, Lalita, Shri Chakra are the royal roads leading back to the (primacy) of spirituality "Shiva". This is how and why the worship of her ladyship the Matrix of three worlds is universal in India, Kali in Calcutta East, Sharika Raginya, Vaishnow Devi in Kashmir North, and Kanya Kumari in the southmost tip of India and in between the whole of India is interspaced with Durga temples and Shiva temples. The proof of such temples has come from ancient archeological finds worship in Christianty also, of Virgin Mary and in Islam the respect and regard shown to one's own mother vis-a-vis one's father shows the universal worship of the Matrix of the universe.

So a man reaches (can reach) Shivahood only when he understands His energies mother Shakti in the body as consciousness (Kundalini in secret) and visible outside as the whole universe. Shri Chakra is also a very great representation of all these energies which have been realized by saints and realized souls to pervade Shri Chakra from point to point.

For rationalization let us call them the energies of Lord Shiva in five visible forms of Conscience (चित) Consciousness (आनन्द) Will (इच्छा) Knowledge (ज्ञान) and Action (क्रिया).

So the propitation of सौः and महअ the return journey of man to Shiva reversal of Aham अहं the outward journey stand explained. What happens and how this realization is rationalised let us take the help of Paramartha Sara ones again.

Sh. 45 reaches a personality to अः Shiva and Shakti as one as they really are. On realization, this yogi enters the worldly sphere once again. As Guru Dev would say he rises by descending once again into the Mayic world for his further rise and good of the

world in general and mankind in particular. In these shlokas from Paramarthasara, Shri Abhinava Gupta has shown this status and rise of this yogi to the top stages of spiritualism for the good of us all, let us see. Shloka 46 of Paramarthasara reads :—

पुनरपि च पंचशक्ति
प्रसरणक्रमेण बहिरपि तत्।
अंडत्रयं विचित्रं
सृष्टं बहिरात्मलाभेन ॥४६॥

Once again after realizing this dualistic world as monistic through the medium of monistic-dualistic energies this yogi establishes the three spheres of earth, nature and Maya in the worldly stage by the expansion of five energies of conscience, consciousness (bliss) will, knowledge and power and realizes (understands) as under :— (परामर्श करता है)

इति शक्तिचक्रयन्त्रं
क्रीडायोगेन वाहयन्देवः।
अहमेव शुद्धरूपः
शक्तिमहाचक्रनायकपदस्थः ॥४७॥

"I am" yes "I am" driving by my super energy of independence, the wheels of will, knowledge and action, "I am" the purest one, the playful Lord the master of the superiormost wheel of independent energies.

This is his first realisation called अहं परामर्श. Realization of self.

The second realization called विश्वप्रतिबिम्ब परामर्श realization of the universal reflection is as under :

मय्येव भाति विश्वं
दर्पण इव निर्मले घटादीनि।
मत्तः प्रसरति सर्वं
स्वप्नविचित्रत्वमिव सुप्तात् ॥४८॥

Like the reflection of jar etc in a clear mirror, all this world is shining in me and me alone. Like a man getting out of deep sleep all this world is only my expansion (emblossoming out of me only).

The third stage called आत्मव्याप्ती परामर्श the realisation of self in everything is shown in the next shloka:

अहमेव विश्वरूपः
करचरणादिस्वभाव इव देहः।
सर्वस्मिन्नहमेव
स्फुरामि भावेषु भास्वरूपमिव ॥ ४६ ॥

Like this body with hands and feet etc. I am clearly manifest as this world (individually and collectively) like radiating conscience. I am the Lord moving in every possible thing (as consciousness) its reality.

The fourth and the final realisation called शिवव्याप्ति परामर्श realisation of Shiva (conscience) in everything is as under.

द्रष्टा श्रोता घ्राता
देहेन्द्रियवर्जितोप्यकर्तापि।
सिद्धान्तागमतर्का-
श्चित्रानहमेव रचयामि ॥५०॥

Even without considering the body organs etc "I" am the real seer, hearer and one who smells. The real subject conscient Lord God. Doing nothing at all I the conscient Lord

am writing all scriptures, books on science, logic etc. In short this fully advanced yogi realizes that he is the seer not the seen. He is the doer not what is done. He is the conscient Lord in his universal form doing everything whatever is known or done by others even is his own doing as universal conscience Lord Shiva.

The Upanishads also say the same :

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः
स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरन्यं पुरुषं महान्तम्॥ श्वेताश्वतर उप०॥

So we have seen how Lord Shiva (conscience) manifest, forgets his grandeur becomes a beast of a man but once again leaving his beasthood of three stains, attains to his own stage once again, playing a game of worldliness in between. In reality this playfulness of forgetfulness and recognition प्रत्यभिज्ञा is his nature. Nothing happens all this is He and He alone.

It is,
What it is !
As it is,
That it is.

Bhagwan Utpaladevacharya has been a great saint. He realized his own self all the time. In Shiva Stotravali he has written 3 chapters on glory to Shiva concentrated prayer and about Devotion complete as one. He was always in great ecstasy unaware of the lower self. Diving in his own awareness and would now and then utter a shloka. His disciples who were at his feet all the time noted every word, every shloka. The whole collection was random like a jumble. After sometime a committee of learned people assembled and collected and put all his sayings under suitable headings by great pandits of the time. Two of them have been named as Shri Ram and Aditya Raj by Kshemaraj in his tika on the collection.

The book of twenty chapters about 450 shlokas is a great collection. Every shloka is a book in itself. There is no repetition at all. Every shloka by itself is Bhakti devotion full, full of knowledge and full of yogic practice action. A study of even one shloka deeply understanding the philosophy underlying it and practising the yoga practice hinted in it is enough for a man.

He has described puja worship of god as ध्यान concentration, दृश्य realization contemplation and then स्पर्श touch becoming one with Lord like merging of one with his Lord. He praises the Lord in prayers as a devotee in the same breath describes his grandeur and at the same moment merges in him. Every shloka requires deep study understanding and practice. This humble servant of the servants of my Gurudev had the good luck to study it once in his young days with his friend and teacher Raghu Nath ji Kukiloo twice with my Gurudev Bhagwan Ishwar Swarup Swami Lakshman Joo Maharaj, once in the company of Shri Sharika Devi ji and Shri Prabha Devi ji when the former Devi ji would explain intricacies after the later Devi has translated it. When Shri Swami ji published his Hindi translation of this book he so graciously bestowed a copy to me with his ashirvads. I studied the hindi translation and made a Kashmiri version in

my unripe poetry which I read in front of my Gurudev back in 1970-71. In 1985-86, I started translating into English. Presented a portion to my Gurudev upto chapter 13. He gave it to Mr. John who was ordered out of India for political reasons and the copy I had presented to my Gurudev was not returned to me.

However after a repetition one hundred and eight times and a revision in a class held by Pt. Raghunath ji in No.2 Mohinder Nagar in 1990-91. I did the English version once again and also revised the Kashmiri version. I did not publish it so far to avoid attention. Fame for a spiritual aspirant is too harmful but have now been ordered to publish these two by my Gurudev after receiving a new lease of life in May 1996. In the meantime after I had given my book in Kashmiri and English to the press I came to know that two English versions had already appeared in print. One is by Mr. Kotru of Kashmir, published in 1985 by M/s Moti Lal Banarasi Das, Delhi and another one by Shrimati Constatina Rhodes Bailys published by State University of New York in 1987. Both are identical very good word translations. The former one is in prose form, and the later one is open verse. God bless them both. They have made a very good job of it. But a book on Shaivism is impossible to be explained correctly unless studied at the feet of a realized Shaivite guru. Besides I had the Hindi translation and verbal cassettes of My Lord my Gurudev at my disposal and have tried of my capability to the best to interpret in my weak language.

This writing is incomplete if I do not explain four standard Sanskrit words in support of the theories enumerated herein. These are :

1. चित् 2. चिति 3. चैतन्यं and 4. चित्तं.

1. चित् consists of two alphabets च and इ with the silent त् acting as a Pratyahar प्रत्याहार a joining word only.

   च as will be seen from the table of thirty six categories is the first alphabet representing feeling power, smell. So च represents the five feeling powers and helped by इ, the will power, it represents conscience, the base on which the whole edifice of the, to be world, stands.

   This चित् is the inaffable, unchangeable, unambiguous Conscience-God-Shiva in his विश्वोत्तीर्ण form beyond the universe. As all believe living in the sky, yes it is not in the usual material sky, but lives in चिदाकाश, चिद्धाम. The sky of conscience चिदाकाश and the place where conscience lives. चिद्धाम.

2. चिति=चित् + more will power इ. This is the complete super sovereign energy of चित् Lord Shiva, God, called Shakti god consciousness, in her universal form. काली, देवी, ललिता so on and so forth, and makes (creates, maintains and destroys) the universe.

   चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः ।।
   स्वेच्छया स्वाभित्तो विश्वं उन्मीलयति ।।

3. चैतन्यं - चिति the universal consciousness

has now come further down and become "individual consciousness" the life of a person, the first sutra of (शिवसूत्र) Shiv Sutras "Life is consciousness" चैतन्यमात्मा explains this.

4. चित्तं - The individual conscience, that is, basically universal conscience has now come down and concealed its real identity under the influence of Maya's six bondages and become mind but has a deep desire to go back to its initial grandeur. This desire is the base and चित् Lord Shiva has become - desireful mind चित्तं of a man. That is why it is said "your own self minus desire is God". चित्तं the mind cleared of the desire, causing three stains, does again achieve (merge into) Shivahood its original splendour. ॐ नमः शिवाय which also means I offer my body, mind, and soul all as an oblation into the great fire that is चित् Shiva-God.

I have tried to translate this version of Shivastotravali according to the tika of Kshemaraja as translated into Hindi by Shri Swami Ishwar Swarup ji Maharaj only for the good of myself, and the mankind and my mission shall reach success if, even a single aspirant is benefitted by my efforts.

A vassal of the devotees of my Guru Dev

'Din'

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्यविधायिने।
चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थावभासने॥

I bow to Lord Shiva (who is) ever busy in His five acts
He clearly glitters as :-
Conscience, Bliss incarnate and
One's own self, the super treasure of spirituality.

GOD
What is He

1. Conscience is God Shiva. Consciousness is His Energy—Para-Shakti.
2. Sum total of all possible energies and their owner is GOD.
   शक्तिमान्तु महेश्वरः
3. Any person; living or dead;
   historical or mythological;
   whom you believe is "PERFECT"
   Is your God.
4. Your father and mother are your God.
   Life eternal, consciousness, awareness, came through them to you.
5. You; Yourself, free from "DESIRE" are God.
6. Everything separately and collectively is nothing but God.
   (It is made of Atoms, Atoms are energy).

Remove the misunderstanding delusion :-

(a) "I am,"
(b) "I possess", or/and
(c) "I do", and you will
automatically realize

God in yourself and also
in the Universe as One and only One.

Thus realizing, His all pervading Self, the Soul of all,
With dualistic, distinction - differentiation - fully destroyed
He who recognises Himself full of glory
Becomes glory Himself; God, Lord Shiva
I bow to Him my Guru Dev,
Lord Ishwar Swarup Swami Lakshman Ji

Jai Gurudev

"Din"

ॐ जय गुरुदेव

श्रीमदुत्पलदेवाचार्यविरचिता

श्रीशिवस्तोत्रावली

ॐ उद्धरत्यन्धतमसाद्विश्वमानन्दवर्षिणी ।
परिपूर्णा जयत्येका देवी चिच्चन्द्रचन्द्रिका॥
अभ्यार्थितोऽस्मि बहुभिर्बहुशो भक्तिशालिभिः।
व्याकरोमि मनाक् श्रीमत्प्रत्यभिज्ञाकृतः स्तुतीः॥

श्री क्षेमराज

ॐ जय गुरुदेव

भक्तिविलासाख्यं प्रथमं स्तोत्रम्

पहले स्तोत्र के आधार पर "दीन" के भाव

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम्।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम्॥१॥

ध्यानऽः जपऽः रुस्तुई कऽऽञ्सि भागिवानस
हन्नाऽः मऽन्नाऽः बे तरीकऽः पऽऽन्य पानऽः यस।
यकदम पूरऽः पऽऽठ्य् शिवः भास फ्वलऽमुत
भगत शूभिदार सुई, जय जयकार तस॥१॥

आत्मा मम भवद्भक्तिसुधापानयुवाऽपि सन्।
लोकयात्रारजोरागात्पलितैरिव धूसरः॥२॥

अदऽः छु भुजर म्येः लूकऽव्यवःहारुक
तमी सऽऽत्य् ज़न छुस बऽः छत्योमुत।
आत्मस छु म्येः यावुन फ्वलऽवुन
चानि लोलऽः मसऽ कोइ जाम चोमुत॥२॥

लब्धत्वत्संपदां भक्तिमतां त्वत्पुरवासिनाम्।
सञ्चारो लोकमार्गेऽपि स्तात्तयैव विजृम्भया॥३॥

भक्तिज़न चोन रुत खजानऽः लभित क्यत
चऽऽनिसई शहरस मंज़ रोज़ान
लूकऽः व्यवऽहारऽः वति पकऽःवुन ति तस
सुई चिकऽः चावः, पूरऽः फ्वलान॥३॥

साक्षाद्भवन्मये नाथ सर्वस्मिन् भुवनान्तरे।
किं न भक्तिमतां क्षेत्रं मन्त्रः क्वैषां न सिद्ध्यति॥४॥

युस कान्ह भक्ति ज़न, सारिनई जायन मंज
आसि करऽवुन, चोन साक्षात्कार
क्वसऽः जाय छऽनऽः तस, बडि ब्वड तीर्थः
कुस शब्द नऽः मन्त्रः, सिद्धी दार॥४॥

"कथा जपः" सूत्र शिव सूत्रन मंज
इहऽऽय कथ वनान टीका ज़ोरदार

जयन्ति भक्तिपीयूषरसासववरोन्मदाः।
अद्वितीया अपि सदा त्वद्द्वितीया अपि प्रभो।।५।।

भक्ती अमृतऽः रसऽः मस्त मुत्वालाः
तस ह्यूह ब्यथि कान्ह कति शूभिदार
च़यी ह्यू स्वरूपऽःवान सु छु आसऽवुन
सर्वदा बऽः करऽहऽऽस जय जय कार।।५।।

अनन्तानन्दसिन्धोस्ते नाथ तत्त्वं विदन्ति ते।
तादृशा एव ये सान्द्रभक्त्यानन्दरसाप्लुताः।।६।।

अनन्त आनन्दऽः सनिस समन्दरस
चऽऽनिस ज़ोन तिमऽवई सार
इमौ तिथी भक्ती सरऽः मंजऽः
आनन्दऽः रसऽः सऽऽत्य् फाटऽनोव पान।।६।।

त्वमेवात्मेश सर्वस्य सर्वश्चात्मनि रागवान्।
इति स्वभावसिद्धां त्वद्भक्तिं जानञ्जयेज्जनः।।७।।

च़ऽई छुक पानय सारिनई हुन्द जुव
जुव पनुन सारिनई ठोठ आसान
पऽऽन्य पानऽः स्वभावऽः स्यद्ध चऽऽन्य् भक्ती
युस ती जानि तऽस्य् जय जय कार।।७।।

नाथ वेद्यक्षये केन न दृश्योऽस्येकक: स्थितः।
वेद्यवेदकसंक्षोभेऽप्यसि भक्तैः सुदर्शनः।।८।।

शब्दार्थ

संसार गऽऽलित कुस कान्ह ह्यकि नऽः
ल्वत पऽऽठ्य् च़ीनित इः स्वरूप चोन।
संसारचि खुर्य काञ्ग्रिः मंज़ ति
भगत करान दर्शुन स्वखऽः म्वखऽः चोन।।८।।

भावार्थ

यूगऽः अभ्यऽऽसी वृच़ छनिः गऽऽलित
दर्शुन करिः तऽः क्या बजिरा
भऽऽक्तया चोनुइ प्रथ कुनि चीज़ऽः मंज़ऽः
ब्वथ वछि चोनुइ, वछ तऽऽजुबा।।८।।

अनन्तानन्दसरसी देवी प्रियतमा यथा।
अवियुक्तास्ति ते तद्वदेका त्वद्भक्तिरस्तु मे।।९।।

परा शक्त भगवती टऽऽठ इथऽः पऽऽठिन
अऽऽत्तऽः रुउस आनन्दऽः सर छऽई सऽऽत्य्
तिथय पऽऽठ्य् ही शिवऽनाथऽः टाठि म्यानि
अख चऽऽन्य् भक्ती रूज़तन म्येः सऽऽत्य।।९।।

सर्व एव भवल्लाभहेतुर्भक्तिमतां विभो।
संविन्मार्गोऽयमाह्लाददुःखमोहैस्त्रिधा स्थितः।।१०।।

शब्दार्थ

ही व्यापक प्रभू सुखऽः दुःखऽः त मूहऽः किन
त्रयि वति बनऽवुन ज़गत आसान
सुई सोरुई रुत ज्ञानुक मार्ग
भऽक्तयन च़्येः प्रावनुक साधन बनान।।१०।।

भावार्थ

सुऽख दुऽख त मोह छी रूप ग्वणऽः नई हऽञ्च्
आम तोर सारिनई (लूकन) गण्ड बनान
शूभऽवुन तऽ शक्तिवान शैवी भऽक्त चोन
इमऽवई सऽऽति छु बन्द मऽचऽःरान।।१०।।

भवद्भक्त्यमृतास्वादाद्बोधस्य स्यात्परापि या।
दशा सा मां प्रति स्वामिन्नासवस्येव शुक्तता।।११।।

भक्ती चऽऽन्य् छयम अमृत भासान
चानी ज़ऽऽन्य् हुन्द क्याः टोठ जाम
तमि निशि भ्यन, थऽज्य ज्ञानऽः दशा तिः
शराब ह्यू हुतऽःमुत खरऽःवुन दाम।।११।।

भवद्भक्तिमहाविद्या येषामभ्यासमागता।
विद्याविद्योभयस्यापि त एते तत्त्ववेदिनः॥१२॥

अध्यात्मऽः ज्ञानऽः रूप चऽऽन्य थऽज़ भक्ती
इमौ पूरऽः पऽऽठ्य् अभ्यासस अन्य्
व्यद्यायि अव्यद्यायि द्वनऽवऽन्य सीर सार
तिमऽःवऽई योत ज़ोन ही भगवान॥१२॥

आमूलाद्वाग्लता सेयं क्रमविस्फारशालिनी।
त्वद्भक्तिसुधया सिक्ता तद्रसाढ्यफलास्तु मे॥१३॥

मूलऽः प्यठऽः पावि पावि खसऽवऽन्य फ्वलऽवन्य
इह वऽऽनी रूपऽः थऽर वाह शूभान
चानि भक्ती अमृतऽः सगऽः सऽऽत्य्
अऽऽस्य्तन तिथुई आनन्द म्येः दिवान॥१३॥

शिवो भूत्वा यजेतेति भक्तो भूत्वेति कथ्यते।
त्वमेव हि वपुः सारं भक्तैरद्वयशोधितम्॥१४॥

शब्दार्थ

शिवई बनिथ गछि शिव पूजुन
वनान वीद पुरान सऽऽरी
भगत बनिथइ गछि सु अर्चुन
सार रूप च़ऽः प्रकटान, ईकता सऽऽती॥१४॥

भावार्थ

शिव बनिथ शिव पूजुन शास्त्र वानान
वनुन ग्वछ पूज़्योन भगत बनिथ
क्याजि चई छुक पानय सारिकुई सार
ती ज़ोन भगतौ (च़्यः सऽऽत्य) कुन्यर लभित॥१४॥

भक्तानां भवदद्वैतसिद्ध्यै का नोपपत्तयः।
तदसिद्ध्यै निकृष्टानां कानि नावरणानि वा॥१५॥

अभीद भाव च़्यऽई सऽऽत्य प्रावनऽः बापत
कुस उपाय नऽः भऽक्तयन स्यद्धिदा बनान
नामुरादन इमन दयस कुन बुथ फिरिथ
तिम (उपाय) सऽऽरी बेकार, ब्वन फाटऽःवान॥१५॥

कदाचित्क्वापि लभ्योऽसि योगेनेतीश वञ्चना।
अन्यथा सर्वकक्ष्यासु भासि भक्तिमतां कथम्॥१६॥

ठऽगिल छि कथ इः लभान छी योगी
गऽन्डित वकतन खास जायिनई मंज़
छुक ना च़ऽः भासऽमान भक्तयन पनऽःन्यन
सर्वथा सर्वदा प्रथ जायि मंज़॥१६॥

प्रत्याहाराद्यसंस्पृष्टो विशेषोऽस्ति महानयम्।
योगिभ्यो भक्तिभाजां यद्व्युत्थानेऽपि समाहिताः॥१७॥

योगियन मुकाबलः भक्तिमान पुरषश
बडऽः ब्वड बजिराह इः आसान
प्रत्याहार ध्यानऽः वरऽऽई तिः सु
व्यथानस मंज ति पूरऽः ह्यसऽः आसान॥१७क॥

वास्ना च़ऽट्यतन धारना दियितन
यूगाः सऽऽध्यतन त भऽक्तिस क्या
सु छु व्यवऽहारऽः सातस मंज़ ति
च़्यई सऽऽत्य मीलित ही शिवनाथ॥१७ख॥

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते॥१८॥

शब्दार्थ

मायायि थदिस यत शिव मार्गस मंज़
यूग तय ज़फ तफ न बकार नाथ
अक चऽऽन्य भक्ती यति करऽः नावान
च़्यऽई सऽऽत्य ईकऽभाव ही शिवनाथ॥१८॥

भावार्थ

यूग तय जफ तफ पूजा, छि माया
चानि वति अथ सऽऽत्य म्युल छु दूर

भक्ती यऽऽचन यति मदतस इइः
ज़्यऽई सऽऽत्य मीलित ही शिवऽनाथ॥१८॥

सर्वतो विलसद्भक्तितेजोध्वस्तावृतेर्मम।
प्रत्यक्षसर्वभावस्य चिन्तानामापि नश्यतु॥१९॥

च़वापऽऽर्य् ज़ोतऽवऽन्य भक्ती जलजल
मल त्र्येः छयलतन त्रऽऽवतन म्येः गाश
यमि गाशऽः सारिनई भावन मंज़ बऽः
सतरूप चोन वुछि पूरऽः प्रकाश
अदऽः गलिः गम म्येः, पऽज़्य् पऽऽठय् गछऽः बऽ
ज़्यई सऽऽत्य मीलित ही शिवनाथ॥१९॥

शिव इत्येकाशब्दस्य जिह्वाग्रे तिष्ठतः सदा।
समस्तविषयास्वादो भक्तेष्वेवास्ति कोऽप्यहो॥२०॥

कोताः बजिराः शिव नावस छू
ज़्यवि प्यतिस प्यठ यस सु सदा
सारिनई भूगन हुन्द आनन्द तस भगतस
ज़्यई सऽऽत्य् मीलिथ ही शिवनाथ॥२०॥

शान्तकल्लोलशीताच्छस्वादुभक्तिसुधाम्बुधौ।
अलौकिकरसास्वादे, सुस्थैः को नाम गण्यते॥२१॥

बेअन्त अमृत सर चऽऽन्य भक्ती
वासना लहरि, रुस, शान्त शीतल
न्यर्मल स्वादिष्ट दिवान पूरऽः आनन्द
अलौक्यक रसौ सऽऽत्य परिपूर्ण
युस भगत तऽथ्य् फ्वट या छोन्डुनुई योत
तस ह्यू शोभवुन छुनऽः भ्ययिः कान्ह
सोरुइ केञ्छा तऽम्य् वुछ च़ऽई योत
ज़्यई सऽऽत्य् मीलिथ ही शिवनाथ॥२१॥

मादृशैः किं न चर्व्येत भवद्भक्तिमहौषधिः।
तादृशी भगवन्यस्या मोक्षाख्योऽनन्तरो रसः॥२२॥

म्येः ह्यू भक्ता क्याजि चययि नऽः इः
चानि भक्ती हुन्द उत्तम औषध
मूक्षि रूप ब्याख रस अथ्य् छू सऽऽत्य् सऽऽत्य्
ज़्यई सऽऽत्य् मीलिथ ही शिवनाथ॥२२॥

ता एव परमर्थ्यन्ते सम्पदः सद्भिरीश याः।
त्वद्भक्तिरससम्भोगविस्रम्भपरिपोषिकाः॥२३॥

शब्दार्थ

ही ईषऽः सत्पुरष मञ्गऽवऽन्य छी ज़्येः
सम्पदायि इमऽः भक्ति रसऽः मज़ऽदार
परमानन्दऽः भूग प्रथ रण्गऽः बडऽरान
ज़्यई सऽऽत्य् मीलिथ ही शिवनाथ॥२३॥

भावार्थ

धनः दौलत या अष्टऽः स्यद्ध अऽऽसतन
दयि टऽऽठ्य् त्रावान सोरुई दूर
तिम छी काञ्छान भक्ती हऽञ्ज्य् गंज
ज़्यई सऽऽत्य् मीलिथ ही शिवनाथ॥२३॥

भवद्भक्तिसुधासारस्तैः किमप्युपलक्षितः।
ये न रागादिपङ्केऽस्मिँल्लिप्यन्ते पतिता अपि॥२४॥

शब्दार्थ

छ्यनऽः रुउस कुस्ताम भक्ती अमृत
तिमऽवई वारऽः पऽऽठ् चोमुत इम
रागऽः दीशऽः फऽट्य्मऽत्य् ति छी निर्मल
ज़्यी सऽऽत्य मीलिथ ही शिवनाथ॥२४॥

भावार्थ

भक्ती अमृतऽच्य् ईकःधार वर्षा
नऽन्य् त अलौक्यक तिमई छि वछान
ज़गऽतऽकि रागऽदीष रबि फटित ति इम
तमि सऽऽत्य न बिलकुल भरनऽः इवान

तिम छि आसान लोलऽः चानि भरित
च़्यई सऽऽत्य मीलित ही शिवनाथ॥२४॥

अणिमादिषु मोक्षान्तेष्वङ्गेष्वेव फलाभिधा।
भवद्भक्तेर्विपक्वाया लताया इव केषुचित्॥२५॥

अणिमा प्यठऽः मूक्षस ताम स्यदियिः
भक्ती कुलि की फल आसान
अमिच्यौ लङ्ग्ज़वई मंजऽः तिम नेरान
च़्यई सऽऽत्य मीलित ही शिवऽनाथ॥२५॥

चित्रं निसर्गतो नाथ दुःखबीजमिदं मनः।
त्वद्भक्तिरससंसिक्तं निःश्रेयसमहाफलम्॥२६॥

आश्चर्य कोताः दुऽखऽः मूल मन ति
भक्ति रसः सग प्यथ सुऽख छु दिवान
तमि सगऽः सऽऽत्य म्येः मूक्षि फल मेलान
च़्यऽइ सऽऽत्य मीलिथ ही शिवनाथ॥२६॥

उपसंहार

उत्पलदीवस प्यमःहऽऽ परन बऽः
लोलऽः मुऽत तस ह्यू छा भ्ययि कान्ह
पूर्ण भक्ती पऽज़्य् पऽऽठ्य् तस अऽऽस
च़्यऽई सऽऽत्य मीलित ही शिवनाथ॥१॥
भक्ती विलास नऽऽव तुता तऽम्य् कऽर
श्री क्षेमराजन करऽस टीका
श्री गुरुदीवन सार तमिकुई होव
च़्यऽइ सऽऽत्य् मीलित ही शिवनाथ॥२॥
ईश्वरस्वरूपन सार तमिकुई होव
च़्यई सऽऽत्य मीलित ही शिवनाथ॥२॥
सत्वरऽ "नाथ" च़ऽई ही इश्वर स्वरूप
श्री लक्ष्मन जुव ब "दीन" चोन दास
सीवा करन खऽऽतरऽः च़्यी निश रोजऽःहऽऽ
च़्यऽई सऽऽत्य मीलित ही शिवनाथ

यह प्रार्थना मेरी १९७४ में स्वीकार हुई।

सर्वात्मपरिभावनाख्यं द्वितीयं स्तोत्रम्

दूसरे स्तोत्र के आधार पर "दीन" के भाव

अग्नीषोमरविब्रह्मविष्णुस्थावरजङ्गम-
स्वरूप बहुरूपाय नमः संविन्मयाय ते॥१॥

अग्नी चन्द्रमऽः सिर्यि रूप छुक चई
ब्रह्मा विष्णू ति च़्यई महीश्वर।
थावर जङ्गम रूप ति छि चऽऽनी
सम्विद्रूप च़ऽः विश्वतीर्न।
विश्वमय बहुरूप नाना रूप च़्यई
वारऽः बोज़ लोलऽः हऽत्य् म्यऽऽन्य् नमस्कार॥१॥

विश्वेन्धनमहाक्षारानुलेपशुचिवर्चसे।
महानलाय भवते विश्वैकहविषे नमः॥२॥

ज़गत ज़्युन ज़ऽऽलित परामर्शऽः अग्नस
अद्वैतऽः तीज़ छुई, मलित सुई सूर
सोरुई सम्सार कुनिई आहुत छऽई
परप्रमातृ अग्नस च़्येः नमस्कार॥२॥

परमामृतसान्द्राय शीतलाय शिवाग्नये।
कस्मैचिद्विश्वसंप्लोषविषमाय नमोऽस्तु ते॥३॥

चिदानन्दऽः अमृतऽः रसऽः छुक कोमल
सम्सारऽः सन्ताप हरऽःवुन शीतल
ज़गऽःतुक द्वयत ज़ालऽःवुन च़ऽः भयङ्कर
अलौक्यक कल्यानऽः अग्नस नमस्कार॥३॥

महादेवाय रुद्राय शङ्कराय शिवाय ते।
महेश्वरायापि नमः कस्मैचिन्मन्त्रभूर्तये॥४॥

ही प्रभु परम दीवता रुद्रऽः भगवान
कल्यान करवुन सुऽखऽ रूप शिवनाथ

ईश्वरन हुन्द महेश अहं विमर्शात्मा
अलौक्यक मन्त्र स्वरूपस जयकार॥४॥

नमो निकृत्तनिःशेषत्रैलोक्यविगलद्वसा-
वसेकविषमायापि मङ्गलाय शिवाग्नये॥५॥

त्र्ययिःलूकी हऽञ्ज पिगऽलेमऽच्य् वस
सऽऽरई च़ऽट्य चऽट्य आहुती यस
यूताह भयङ्कर अऽऽसित ति मंगल
कल्यानऽः मय शिवऽ अग्नस नमस्कार॥५॥

समस्तलक्षणायोग एव यस्योपलक्षणम्।
तस्मै नमोऽस्तु देवाय कस्मैचिदपि शम्भवे॥६॥

इमौ उपायौ सऽऽत्य बनान स्यद्धी
तिमन सऽऽत्य न तस केन्ह लेन द्येन
इहोय छु तऽम्य् सुन्द असली लक्षन
कल्याणऽ मय प्रकाशऽः, रूपस नमस्कार॥६॥

वेदागमविरुद्धाय वेदागमविधायिने।
वेदागमसतत्त्वाय गुह्याय स्वामिने नमः॥७॥

वीदन शास्त्र हुन्द वैरी युस
तिहञ्ञऽई वत हावऽवुन ति युस
सार रूप तिहुन्द, स्वरूप तिः पानऽः युस
खटिथ मटिथ मऽऽलिकस, जयजयकार॥७॥

संसारैकनिमित्ताय संसारैकविरोधिने।
नमः संसाररूपाय निःसंसाराय शम्भवे॥८॥

संसार बनावऽःनुक कुन कारण छू
संहार करऽःवुन संसारस छू।
विश्वतीर्ण संसारऽः थ्वद सुई छू
विश्वमय तऽस्य् कल्यानस नमस्कार॥८॥

मूलाय मध्यायाग्राय मूलमध्याग्रमूर्तये।
क्षीणाग्रमध्यमूलाय नमः पूर्णाय शम्भवे॥९॥

मूल मंज़ अन्द क्रमऽः क्रमऽः ति सुई छू
मूलमंज़अन्द इकऽःवटऽः अक्रमऽः छू
मूलऽः मंज़ऽः अन्दऽः हीन तिः सुइ छू
परिपूर्ण तऽस्य्, शिवस जय जय कार॥९॥

नमः सुकृतसंभारविपाकः सकृदप्यसौ।
यस्य नामग्रहः तस्मै दुर्लभाय शिवाय ते॥१०॥

अकि लटि ति नाव ह्युन यस ईश्वर सुन्द
फल पुन्य कर्मन बद्यन डेरन हुन्द
दयि अनुगृह बनान ज़न्मऽः ज़न्मन हुन्द
दुर्लभ तऽस्य् शिवऽः नाथस नमस्कार॥१०॥

नमश्चराचराकारपरेतनिचयैः सदा।
क्रीडते तुभ्यमेकस्मै चिन्मयाय कपालिने॥११॥

थावर-ज़ंगम चराचर शरीर छुई
लछि बऽद्य् प्रीत गिन्दनस कित यार छी
नऽऽल्य् कलऽखपऽर्यन् हऽन्द्य् बऽड्य् भार छी
कुनिस च़्येः चिदानन्दऽः, स्वरूपस नमस्कार॥११॥

मायाविने विशुद्धाय गुह्याय प्रकटात्मने।
सूक्ष्माय विश्वरूपाय नमश्चित्राय शम्भवे॥१२॥

छलऽःग्वर अऽऽसित ति शुद्धऽः स्वरूप सुई
खटिथऽई रूज़ित ति प्रकट रूप पानऽः सुई
सूक्षऽम अऽऽसित ति विश्वरूप महान सुई
नानारूप शिवऽनाथस नमस्कार॥१२॥

ब्रह्मेन्द्रविष्णुनिर्व्यूढजगत्संहारकेलये।
आश्चर्यकरणीयाय नमस्ते सर्वशक्तये॥१३॥

ब्रह्मा इन्द्र विष्णऽः रूपऽः किन वारऽः पऽऽठ्य्
बनऽऽविथ जगत संहार खेलि सुई रऽऽठ्य्
अलौक्यक कर्म करान सु इथय पऽऽठ्य्
सर्व शक्ति मान भगवानस नमस्कार॥१३॥

तटेष्वेव परिभ्रान्तैः लब्धास्तास्ता विभूतयः।
यस्य तस्मै नमस्तुभ्यमगाधहरसिन्धवे॥१४॥

यमि क्यन बठिनई प्यठ फेरनऽः सऽऽत्य्
सार्यै सम्पदायि पऽऽन्य् पानय सऽऽत्य्
अष्टऽः स्यद्धी पूरऽः तस पानऽः सऽऽत्य् सऽऽत्य्
ओन्त वोञ्त हीन, हरऽः सदरस नमस्कार॥१४॥

मायामयजगत्सान्द्रपङ्कमध्याधिवासिने।
अलेपाय नमः शम्भुशतपत्राय शोभिने॥१५॥

मायामय ज़गत, ब्वड लेम्बि सदराः
तत् मंज रूज़ित तिः साफ पोशि गन्धराः
न्यर्लीप तति तिः युस शूभिधाराः
शम्भू हथपत्र, कमलस नमस्कार॥१५॥

मङ्गलाय पवित्राय निधये भूषणात्मने।
प्रियाय परमार्थाय सर्वोत्कृष्टाय ते नमः॥१६॥

मङ्गल स्वरूप श्वद्ध पूर्ण खज़ानः
गहऽनन हुन्द गहनऽः टाठि ख्वतऽः टोठः
त्र्यन कालन मंज युस सत्स्वरूपः
सारिवऽई ख्वतऽः सृष्ट दीवस नमस्कार॥१६॥

नमः सततबद्धाय नित्यनिर्मुक्तिभागिने।
बन्धमोक्षविहीनाय कस्मैचिदपि शम्भवे॥१७॥

बन्धनन् मंज ग्वङ्ङ्मुत ति सुई छू
सर्वदा मुऽक्ती हुन्द पात्र छू
बन्धः या मुऽक्ती, अपारिः सुई छू
तऽस्य अलौक्यक शुम्भस, जयजयकार॥१७॥

उपहासैकसारेऽस्मिन्नेतावति जगत्त्रये।
तुभ्यमेवाद्वितीयाय नमो नित्यसुखासिने॥१८॥

बऽड जन त्रलूकी तोति छयनऽः केञ्ह तिः
असुना योतई सार छू अथ तिः
तथ मंज न्यथ छुक आनन्दघन तिः
ही नाथऽः च्येः अद्वयतस नमस्कार॥१८॥

दक्षिणाचारसाराय वामाचाराभिलाषिणे।
सर्वाचाराय शर्वाय निराचाराय ते नमः॥१९॥

दक्षिणाचारूक सार स्वरूप छुक
वामाचार तिः चऽई काञ्छऽःवुन छुक।
सऽऽरी आचार पालऽःवुन चऽई छुक
आचारऽः थऽदऽसऽई शरवस नमस्कार॥१९॥

यथा तथापि यः पूज्यो यत्रतत्रापि योऽर्चितः।
योऽपि वा सोऽपि वा योऽसौ देवस्तस्मै नमोऽस्तु ते॥२०॥

यमि रूपऽः तमि रूपऽः यस पूज़ऽऽनी
यति तति सऽऽरी तऽस्य् पूज़ऽऽनी
दीवता सोन युस तऽस्य् पूज़ऽऽनी
स्वात्मस परमात्मस तस नमस्कार॥२०॥

It is.
What it is ?
As it is.
That it is.

मुमुक्षुजनसेव्याय सर्वसन्तापहारिणे।
नमो विततलावण्यवाराय वरदाय ते॥२१॥

मूक्ष काञ्छवऽन्य् तिः यस.छी सीवान (पूज़ान)
सारिनऽइ दुऽखऽनऽई युस छू गालान
बेअन्त आनन्द स्वन्दर शूभान
तऽस्य् साधकस वरदातस नमस्कार॥२१॥

सदा निरन्तरानन्दरसनिर्भरिताखिल-
त्रिलोकाय नमस्तुभ्यं स्वामिने नित्यपर्वणे॥२२॥

धाराधार चिदानन्दऽः, रसऽः सऽऽत्य बरिथई
सोरुई त्रिजगत, थौ ईश्वरऽःनऽई

प्रथ बिज़ि तस छू, ब्वड दोह अऽऽसिथई
सारिनऽई हव्दिस तस, सऽऽमियस नमस्कार॥२२॥

सुखप्रधानसंवेद्यसम्भोगैर्भजते च यत्।
त्वामेव, तस्मै घोराय शक्तिवृन्दाय ते नमः॥२३॥

मज़ऽःदार [1]ख्यनऽः च्यनऽः, किः आनन्दऽः सऽऽत्य्
स्वात्मऽः दीवऽः पूज़ान च्यऽई, इमऽः लोलऽः सऽऽत्य्
[2]भीदनाशक तिमन, यन्द्रयदीवयन सऽऽत्य्
रोजऽहऽऽ बऽः सर्वदा, करित जयजयकार॥२३॥

मुनीनामप्यविज्ञेयं भक्तिसम्बन्धचेष्टिताः।
आलिङ्गन्त्यपि यं तस्मै कस्मैचिद्भवते नमः॥२४॥

मुनी ज़न ति यस छिनऽः ज़ऽऽनित ह्येकान
भक्ती सऽऽत्य् योत युस लभनऽः ईवान
तमी सऽऽत्य् भऽक्तय् तस, नालऽमतिः रटान
तमिसऽई च्येः कसतामस नमस्कार॥२४॥

परमामृतकोशाय परमामृतराशये।
सर्वपारम्यपारम्यप्राप्याय भवते नमः॥२५॥

परमऽः आनन्दऽः अमृत खज़ानः चऽई
मूक्षि लक्ष्मी हुन्द ब्वड ढेराः चऽई
थदि ख्वतऽः थ्वद सोरुई थज़ऽराः चऽई
सुलभ च्येः, लाजवाबस नमस्कार॥२५॥

महामन्त्रमयं नौमि रूपं ते स्वच्छशीतलम्।
अपूर्वामोदसुभगं परामृतरसोल्वणम्॥२६॥

थ्वद अहंपरामर्श मन्त्र निर्मल
अलौक्यक सुगन्दित मनोहर शीतल
सर्व उत्तम आनन्दऽः रसऽः पूर्ण
चित् आनन्ददा स्वरूपस नमस्कार॥२६॥

---
१. वछनऽ बोज़नऽ अथवा स्पर्शऽः मुशकऽः २. खोफनाक

स्वातन्त्र्यामृतपूर्णत्वदैक्यख्यातिमहापटे।
चित्रं नास्त्येव यत्रेश तन्नौमि तव शासनम्॥२७॥

व्वन्य् छु शलूखा अक रछा सक्तऽई
तत ति वत दियि पानऽः गुरऽःदीवई
ज़ारऽः पारऽः तऽस्य् करऽः तऽस्य् करऽः भक्ती
शिवनाथ ईश्वरस्वरूपस नमस्कार॥२७क॥

स्वरूपः अद्वैतः भ्वर स्वातन्त्र अमृत
नाना रूपऽः वार्ता हावऽवुन पठ
छुनऽः केन्ह लयिवुन ब्रोन्ठऽः कनि यत्
तऽथ्य् चऽऽनिस दयि हुक्मस नमस्कार॥२७ख॥

तथा

विश्वरूपऽः जगत ज़न नाना रूपऽः पठ
स्वरूपऽः अद्वैयतुक स्वातन्त्र अमृत।
हावऽः वुन अऽऽसित तिः, कम तर छु यत
तऽथ्य् चऽऽनिस दयि हुकमस नमस्कार॥२७॥

सर्वाशङ्काशनिं सर्वालक्ष्मीकालानलं तथा।
सर्वामङ्गल्यकल्पान्तं मार्गं माहेश्वरं नुमः॥२८॥

सऽऽरी शक दूर करऽःवुन छु युस
दरिद्र गालऽःवुन बडिबुऽड नार युस
सऽऽरी अमङ्गल गऽऽलित छनान युस
तऽथ्य चऽऽनिस शिवऽः मार्गस नमस्कार॥२८॥

तथा

वथ छ्यम म्येः रऽच्न इः शक दूर करिमय
इहऽः लूकऽच्य् बदनसीबी ति गालिमय
कुनि केन्ह बलाय आसि स्वति नष्ट करिमय
वारऽः पऽऽठ्य शिवनाथ वनि म्येः अनिमय
अन्तरअर्थवाद अथ्य् वनान त्रकऽः मत
महेश्वरऽः सऽन्दिसई मार्गस नमस्कार॥२८॥

जय देव नमो नमोऽस्तु ते, सकलं विश्वमिदं तवाश्रितम्।
जगतां परमेश्वरो भवान्, परमेकः शरणागतोऽस्मि ते॥२९॥

आसय शरन, चऽई कीवल छुक
ज़गऽतकि सऽऽमियि चऽः रछऽवुन छुक
प्रथ कुनि चीज़क चई आसरऽः छुक
बारम्बार भगऽवानस नमस्कार॥२९॥

उपसंहार

नमस्कार इथऽः पऽऽठ्य कस तगि करऽनुई
चित आनन्दऽः न्वट कस तगि भरऽनुई
तऽमि मंजऽः अदः पतऽः कस तगि फिरुनुई
उत्पल क्षीम श्री लक्ष्मनस नमस्कार

दया करितव ही ग्वरऽः दीवौ म्येः
तुहुन्द नाव क्यज़ि ह्युत अज़ अडऽःल्युक म्येः
भाव ओसुम भरुन, ताव छुमनऽः केन्ह म्येः
"दीन" करान पनऽःनिस "नाथस" नमस्कार॥ॐ

प्रणयप्रसादाख्यं तृतीयं स्तोत्रम्

तीसरे स्तोत्र के आधार पर "दीन" के भाव

ही ईश्वरस्वरूपऽः ग्वरऽः दीवऽः म्यानि
वञ्क्यन इः करुमय म्ये शरुह
उत्पल दीवुन त्र्ययुम छु स्तोत्र
कऽऽशिर पऽऽठ्य फिरऽः छुम म्येः रुह॥१॥

करुम कृपा चऽः इम पानऽः मदऽतस
वऽऽनी दिम म्येः होश तय ह्यस
कलमस च़्यई वारऽः रक्षा करतम
इथऽः पऽऽठ्य् तिथऽः पऽऽठ्य रोज़तम ख्वश॥२॥

सदसत्त्वेन भावानां युक्ता या द्वितयी गतिः।
तामुल्लङ्घ्य तृतीयस्मै नमश्चित्राय शम्भवे॥१॥

आसनऽः नासनऽः रूप द्वयि रंगऽः थ्यती
प्रथ कुनि चीज़स यथ जगतस मंज़
तिमौ थऽज़ त्रयिम गती छेय यस
अलौक्यक शिवस, तस जय जयकार॥१॥

(सच को सच तो सब कहते हैं
झूठ बिना सच जाने कौन
सच झूठ दोनों जहां से निकले
वह सच जाने विरला ही।) *(दीन)*

आसुरर्षिजनादस्मिन्नस्वतन्त्रे जगत्त्रये।
स्वतन्त्रास्ते स्वतन्त्रस्य ये तवैवानुजीविनः॥२॥

ई स्वतन्त्र प्रभू स्वतन्त्र छु नऽः कान्ह
च़्ये वरऽऽय पराधीन त्र्ययिलूकी मंज़।
देवर्षि तामत त्यली स्वतन्त्र छि
दास चऽऽन्य् बनेमऽत्य्, (चानि) भक्ती मंज़॥२॥

अशेष-विश्वखचित-भवद्वपुरनुस्मृतिः।
येषां भवरुजामेकं भेषजं ते सुखासिनः॥३॥

सम्सारऽः भ्वरुत चोन इः चित् स्वरूप
इमौ क्वर सुमरन, पूरऽः ह्यसऽः सान
तिमऽवी ज़गतक्यन रूगन ल्वभ दवा
तिमऽई रूद्य् यति सर्वदा सुऽखऽः सान॥३॥

सितातपत्रं यस्येन्दुः स्वप्रभापरिपूरितः।
चामरं स्वर्धुनीस्रोतः स एकः परमेश्वरः॥४॥

पनऽःनुई चित्प्रकाश प्रमेय रूप चन्दरमऽः
मलहीन सफेद छत्र आसान यस

सुई कुनई परमऽः ईश्वर छु शूभिदार
मध्य धामुक प्रवाह गंगा, गजगाह, तस॥४॥

टीका

प्रमेय गव विश्व इः तिः छु च़्यतऽः कुई प्रकाश
च़्यत प्रकाश आत्मरूप शिवई गव स रूपऽः गाश
प्रमेय गव च़न्दरमऽः अमा कला छत्र गोल आकाश
मध्यप्रवाह कुण्डलिणी शक्ति तमिची आसान यूगियस आश
सुई गव गंगा जीव रूप आत्मस-शिवस जटि हुन्द वाश
सुई गव चामर मलऽः मछि गालान रक्षा जीवस दुःखन नाश
चन्द्रयऽ छथऽःर गंगा चामर ज़ीवस शिवस पनऽः नुई प्रकाश
परम गव बडि ब्वड विश्वतीर्न पानऽ पूरण गाश
ईश्वर गव ऐश्वर्यता स्वतन्तर शक्ति पानऽः प्रकाश
चन्द्रमऽः जगत स गंगा शक्तिः औ परमीश्वर अः सौः प्रकाश
ध्यान दर्शुन सपर्श, आणव शाक्त शाम्भव त्र्यनऽःवय भीदस करान नाश
व्यमर्श कर वारऽः पऽऽठय दीनः सत्वरण दितुनय अछिन गाश

प्रकाशां शीतलमेकां शुद्धां शशिकलामिव।
दृशं वितर मे नाथ कामप्यमृतवाहिनीम्॥५॥

ही म्यानि स्वामी, प्रकाशमय शीतल
च़न्दरमऽः कला हिश ख्वसऽः न्यर्मल
त्रावान पूरः थ्वद अमृतऽः फल
पनऽन्य् सुऽई नज़रः, करतम जल जल॥५॥

त्वच्चिदानन्दजलधेश्च्युताः संवित्तिविप्रुषः।
इमाः कथं मे भगवन्नामृतास्वादसुन्दराः॥६॥

च़्येः चि़दानन्दऽः सदरऽः मंज़ऽः नेरान
संव्यथमय ज्ञानऽः कतरऽः कमतान्य्
परमानन्दः अमृतऽः स्वादऽः आसान
कोनऽः तिमई म्यति शूभाः भखशान॥६॥

त्वयि रागरसे नाथ न मग्नं हृदयं प्रभो।
येषामहृदया एव तेऽवज्ञास्पदमीदृशाः॥७॥

ही म्यानि स्वामी ही जगत प्रभू
यऽम्य् सुन्द हृदय फ्वट न (च़ऽऽनिस) भक्ती रसस
लोलऽः रसऽः हृदयिः हीन, सु इन्सानः
अपमानऽः पात्रस; क्याः बऽ करस॥७॥

प्रभुणा भवता यस्य जातं हृदयमेलनम्।
प्राभवीणां विभूतीनां परमेकः स भाजनम्॥८॥

यऽम्य् सुन्द हृदयाः पज़ि भक्ती सऽऽत्य
ही शंभू च़्यई सऽऽत्य प्राविः ईकता
तऽस्य् अकिस बानऽः रुत ह्युत आसान
विभूती दयि सऽञ्ज्य् सुई प्रावता॥८॥

हर्षाणामथ शोकानां सर्वेषां प्लावकः समम्।
भवद्ध्यानामृतापूरो निम्नानिम्नभुवामिव॥९॥

सऽऽलाभऽः पानि सऽऽत्य सन्यर त व्गनेर
धरथी हुन्द इथऽः स्वम सपदान
भगवानऽः चानि ध्यानऽः अमृतऽः तिथय
हर्ष त शूक भऽक्तिस ह्युव छु बनान॥९॥

केव न स्यादृशा तेषां सुखसम्भारनिर्भरा।
येषामात्माधिकेनेश न क्वापि विरहस्त्वया॥१०॥

मशिः पनुन पान त मऽशतन
मशुन गछि नऽः ज़ान्ह भगवान
यस सर्वदा रोज़ि इहोय ध्यान ही ईशः
कथ दशायि मंज छुनऽः सुः सुखऽसान॥१०॥

युस कान्ह भऽक्तया: प्रथ कुनि वखतन
पनऽनि ख्वतऽः थवि चोन ईषऽः ध्यान
कथ दशायि मंज़ तस केन्ह परवाय
आसि नऽः कर सू पूरऽः सुऽखऽः सान॥१०॥

गर्जामि बत नृत्यामि पूर्णा मम मनोरथाः।
स्वामी ममैष घटितो यत्त्वमत्यन्तरोचनः॥११॥

ही ख्वश इवऽवनि टाठि म्यानि सऽऽमियिः
स्वप्रकाश होवथम च़ऽः बन्योख म्योन
मनऽः कामना म्यऽऽन्य् स्यद्ध छय गऽऽमऽच्य्
नऽच़्य् नऽच्य् ग्रऽज़्य् ग्रऽज्य ग्यवऽः गीत चोन॥११॥

नचऽः ना तऽः गृज़ऽः ना पनऽः निस दोहस
अज़ मनऽःकामना गयिः म्येः पूर
अऽऽन्तऽः रव्स शूभिदार टोठ भगवान म्योन
सऽऽमी बन्यौ म्येः, दित दर्शुन पूर॥११॥

नान्यद्वेद्यं क्रिया यत्र नान्यो योगो विदा च यत्।
ज्ञानं स्यात् किन्तु विश्वैकपूर्णा चित्त्वं विजृम्भते॥१२॥

यति न केन्ह ज़ानऽःनी, न छु केन्ह करऽःनी
न तति यूग साधुन, न ज्ञान-अज्ञान
तथ च़्यथप्रकाशऽः रूप, परमार्थऽः अग्नस
भीदऽः सार सम्सार, पूर्णाहुती ज़ान॥१२॥

ती म्येः करनाव यति न आसि करुनुई केन्ह
ती म्येः स्वरनाव यति न आसि स्वरऽनुई केन्ह
विज़ि विज़िः ओस वनान सत्वर ईश्वर स्वरूप
ही म्यानि भगवानऽः दितऽः म्येः तिथुई श्रेह॥

दुर्जयानामनन्तानां दुःखानां सहसैव ते।
हस्तात्पलायिता येषां वाचि शश्वच्छिवध्वनिः॥१३॥

अऽऽन्तऽः रऽस्य दुऽख त दऽऽद्य्
इम नऽ ज़ाञ्ह कऽऽञ्सि ज़ीन
तिमौ तलऽः व्वऽठ, (यकदम) तिमऽवई कऽड
च़ोन नाव ज़्यवि ह्यत, इम सदा लीन॥१३॥

उत्तमः पुरुषोऽन्योऽस्ति युष्मच्छेषविशेषितः।
त्वं महापुरुषस्त्वेको निःशेषपुरुषाश्रयः॥१४॥

युष्मत या तद शब्दौ ख्वतऽः थ्वद
उत्तम पुरुषस रूप आसान
ही महापुरऽषऽः अद्वयतऽः शिवनाथ
सारिनई छुख च़ऽई आधार आसान॥१४क॥

सु तऽः च़ऽः नाव छी भीदःऽ व्यमर्शिक
अहं मन्त्र आसान छु परामर्श
सारिनई आधार कुन प्रकाशः च़ऽः
महापुरुष तवऽई छुई नाव आसान॥१४ख॥

च़ऽः तऽः हु, छु त्यली कान्ह चीजः
यलि बऽः पानऽः मूजूद आसान
इम त्र्यनऽवय यस प्यठ ठहरित, निर्भर
तस्य् महापुरुषस शिव छि वनान॥१४ग॥

सोरुइ जगथा त्यलि छु आसऽःवुन
यलि बऽः छुस अथ वछन वोल
म्येः सान यथ विश्वमय जगतस
विश्वतीर्न शिव छुई मऽऽज्य तय मोल॥१४घ॥

जयन्ति ते जगद्वन्द्या दासास्ते जगतां विभो।
संसारार्णव एवैष येषां क्रीडामहासरः॥१५॥

पूज़ऽनी छी, ही जगत सऽऽमी
चान्यन सीवकन छु धन्यधन्यवाद
भयन्कर सम्सारऽः समन्दर तिः
गिन्दऽनस क्युत तिमन छू मऽऽदान॥१५॥

आसतां तावदन्यानि दैन्यानीह भवज्जुषाम्।
त्वमेव प्रकटीभूया इत्यनेनैव लज्ज्यते॥१६॥

चानि वति पकऽ:वऽन्य् इम छि भक्ति ज़न
ब्ययि ब्ययि सिद्धियिः क्याः तिम मंगन
छुक चोन लोलाः दर्शुन करऽः हन
तिः मंगऽनस तिः छी, तिम मञ्दऽछन॥१६॥

मत्परं नास्ति तत्रापि जापकोऽस्मि तदैक्यतः।
तत्त्वेन जप इत्यक्षमालया दिशसि क्वचित्॥१७

म्यानिः ख्वतऽः छुनऽः, काञ्ह ब्बड दीवता
तोति छुस सर्वदा, ज़प बऽः करान
स्वात्मस सऽऽत्य् ईकता, ब्वड ज़प आसान
माल नऽऽल्य छ़निथ छुक ती हावान॥१७॥

सतोऽवश्यं परमसत्सच्च तस्मात्परं प्रभो।
त्वं चासतस्सतश्चान्यस्तेनासि सदसन्मयः॥१८॥

पज़ि निशि अपुजाः भ्युन छू आसान
अपज़ि निशिः आसान पुज़ छू अलग
द्वनऽः वऽन्य् निश चऽः थ्वद छुक आसान
सत् असत रूपऽः तिः च्यई आसान॥१८क॥

युस न ज़ान्ह आसान आकाशि पोश ज़न
सु तिः छु चोनुई योतुन भास
भासमान आसऽवुन प्रथ काञ्ह चीज़ाः
सु तिः छु चोनुई योतुन भास
भाव-अभाव किन तिः च़ऽई छिय ज़ानान
सु तिः छु चोनुई योतुन भास
सऽऽरिसई थ्वद छुक च़ऽः लाजवाब (अनुत्तर)
सु तिः चोनुई भास छुई नमस्कार॥१८ख॥

सहस्रसूर्यकिरणाधिकशुद्धप्रकाशवान्।
अपि त्वं सर्वभुवनव्यापकोऽपि न दृश्यसे॥१९॥

ही म्यानि सऽऽमी ही भगवानऽः
सास सिर्यिः ज़्यादऽः साफ चोन गाश
सरिनऽई भवनन मंज व्यापक च़ऽः
काञ्ह नऽः वछान, तोति चोन प्रकाश॥१९॥

जडे जगति चिद्रूपः किल वेद्योऽपि वेदकः।
विभुर्मिते च येनासि तेन सर्वोत्तमो भवान्॥२०॥

जड-रूप सऽऽरिसई जगतस मंज छुक
भगवानऽः च़ऽई चैतन्य-स्वरूप
ज़ानऽनस लायक तिः छुक च़ऽई पानऽः
ज़ानःनावन वोल तिः पानय स्वरूप
कमपायन मंज़ रूज़ित च़ऽः व्यापक
तवय छी सर्वोत्तम च़्येः वनान
(करतऽः दया च़ऽई पनिन्यन दासन
बारम्बार छी अऽस्य् च़्येः नमान)॥२०॥

अलमाक्रन्दितैरन्यैरियदेव पुरः प्रभोः।
तीव्रं विरौमि यन्नाथ मुह्याम्येवं विदन्नपि॥२१॥

ही भगवान शंकरऽः बोज म्यऽऽन्य् ज़ऽऽरी
ब्ययि केन्ह मङ्गनस छु नऽः केन्ह लाभ
च़्येः ब्रोञ्ठऽः कनि छुस, भ्ययि भ्ययि वनान
यूत ज़ऽऽनित छुस, मूहऽः भ्रमान॥२१॥

सुरसोद्बलाख्यं चतुर्थं स्तोत्रम्

चोथे स्तोत्र के आधार पर "दीन" के भाव

ग्वरः दीवऽः म्यानि आसय शरण च़्यऽई
रक्षपाल छुक म्येः च़ऽई दातार च़्यऽई
चूर्युम स्तूत्र कोता म्वदुर छु
फ्युर अथ दित वछऽहा बजर ती

दिम म्येः बुद्धी, करऽः इः कऽऽम वुऽन्य्
वातऽः नाव अन्ज़ाम बऽडराव लोल चऽई
चानि दयायि सऽऽत्य सुऽन्दर बनऽन्य् गऽछ्
अज़ परऽः लीला नऽव, जान ईः बनऽन्य् गऽछ्

चपलमसि यदपि मानस
तत्रापि श्लाघ्यसे यतो भजसे।
शरणानामपि शरणं
त्रिभुवनगुरुमम्बिकाकान्तम्॥१॥

चञ्चल अऽऽसित ति छुक मनऽः थ्यकनी
यमि किञ यलि त्यलि शरण छुक गछान
त्रभऽवनऽः सऽऽमियस पार्वती प्रेयमस
ज़गऽतस ति रछऽवऽन्यन युस छु रछान॥१॥

उल्लङ्घ्य विविधदैवत-
सोपानक्रममुपेयशिवचरणान्।
आश्रित्याप्यधरतरां भूमिं
नाद्यापि चित्रमुज्झामि॥२॥

क्रमऽःक्रमऽः पावि पावि दीवपूज्य् हऽञ्ज़ि हेरि
खसिथई प्रावऽनी शिव पाद प्रऽऽविम्।
कोताः तऽऽजुबाः वऽनि तिः छुस नऽ बऽः
नीचऽ ख्वतऽः नीच अवस्था त्रावान॥२॥

प्रकटय निजमध्वानं
स्थगयतरामखिललोकचरितानि।
यावद्भवामि भगवं-
स्तव सपदि सदोदितो दासः॥३॥

युत ताम चऽऽनी दया पूरऽः बनिहेम
जल जल बनऽः हऽऽ दास चोनुई
युस दास प्रथ वक्तऽः हर हालस मंज़
सीवा रोज़िहे करान चऽऽनी
त्वत ताम गालतम लूकऽव्यवहार ब्ययि
वत पनऽन्य् म्येः रोज़तम हावऽऽनी॥३॥

पृथ वक्तऽः नोकर भगवानऽः सुन्द गव
दोह त रात अन्तर मुऽख रोज़ान
पृथ श्वासऽः उश्वासस मंज़ आसि
दयः सुमरन तस व्याप्त आसान
सोइ नोकरी भगवानऽः सऽञ्ज़ गयि
शक्ति पात तऽथ्य छी शास्त्र वनान
यकतियार तमिकुई पानऽः शिवनाथस
नम्रतायि सऽऽत्य छिस अऽस्य् ती मंगान
युत ताम सोइ कऽऽम अन्द असि वाति
त्वतताम तमिची वत काञ्छान॥३॥

शिव शिव शम्भो शङ्कर
शरणागतवत्सलाशु कुरु करुणाम्।
तव चरणकमलयुगल-
स्मरणपरस्य हि सम्पदोऽदूरे॥४॥

ही कल्याण स्वरूप म्यानि शिवनाथ जी
शऽऽन्ती दिनऽः वालि शम्भूनाथ
शङ्कर छि वनान कल्यान करऽःवनिस
शरणागतन हुन्द छुक कृपानाथ
जल जल दीनस दया चऽः करतऽः
चरनऽः कमलन छुसय थप बऽ करान
ध्यानस मंज़ युस चऽऽनिस ल्वगऽमुत
सम्पदायि तस न दूर रोज़ान नाथ॥४॥

तावकाङ्घ्रिकमलासनलीना
ये यथारुचि जगद्रचयन्ति।
ते विरिञ्चिमधिकारमलेना-
लिप्तमस्ववशमीश हसन्ति॥५॥

ही इश्वर युस च्यऽऽनिस चरणऽः रूपी
कमलासनस प्यठ लीन आसन
पानस युथ ख्वश करऽवुन आस्यस
तऽथ्य ह्यू सम्सार छु बनावन

अदऽः सु अधिकार मलस फटिमतिस
पराधीन ब्रह्मा जीयस ति ह्यडन
(तऽस्य् कुन जयकार अऽस्य् ति छि करान
असि ति दयस कुन फिरतन सु मन)॥५॥

त्वत्प्रकाशवपुषो न विभिन्नं
किंचन प्रभवति प्रतिभातुम्।
तत्सदैव भगवान् परिलब्धो-
ऽसीश्वर प्रकृतितोऽपि विदूरः॥६॥

स्वभावऽः किन जन छुक दूरि रोज़न
प्रकाशि चानि वरऽऽय नऽः केन्ह भासन
चोनुई स्वरूप सोरुई ज़गत ज़ोतन
सर्वदा इथय पऽऽठय छुसत बऽ ति लभन॥६॥

पादपङ्कजरसं तव केचिद्
भेदपर्युषितवृत्तिमुपेताः।
केचनापि रसयन्ति तु सद्यो
भातमक्षतवपुर्द्वयशून्यम्॥७॥

केन्ह लूक वछिमय चरनऽः कमलन हुन्द
आनन्द भीदऽः भावऽः ज़र्यिः तुलान
बी आसनऽः किन ह्वतऽमुत त बेमज़ऽः
भाव तिन्हुन्द न थ्यकऽनी आसान
शूभऽवऽन्य च़्येः सऽऽत्य् मीलमऽत्य् भक्तिज़न
निरन्तर यकदम छिहक प्रकटान
भीद भावऽः वरऽऽय चोन स्वरूपऽः आनन्द
कमि तान्य् प्रेमऽः मज़ऽः तिम लूटान॥७॥

नाथ विद्युदिव भाति विभाते
या कदाचन ममामृतदिग्धा।
सा यदि स्थिरतरैव भवेत्तत्
पूजितोऽसि विधिवत्किमुतान्यत्॥८॥

नाथऽः म्यानि, वुजऽःमलिः हिश कुनिःकुनिः
परमानन्दऽः ज़्रित्याः छुख म्येः त्रावान
वारऽः पऽऽठ्य् स्वऽः थक कडिहे म्येः प्यठ
व्यज़सान पूज़ऽहऽऽत अमृत च्यवान॥८॥

सर्वमस्यपरमस्ति न किंचिद्
वस्त्ववस्तु यदि वेति महत्या।
प्रज्ञया व्यवसितोऽत्र यथैव
त्वं तथैव भव सुप्रकटो मे॥९॥

सत असत पदारथ सोरुई च़ऽई छुख
च़्येः वरऽऽय छ्यनऽः यति केन्ह बनावट
इथुई युस स्वरूप बजि ब्वज़ म्येः घनिरोव
तिथुई ह्यू पूरऽः पऽऽठ्य् गछतम प्रकट॥९॥

स्वेच्छयैव भगवन्निजमार्गे
कारितः पदमहं प्रभुणैव।
तत्कथं जनवदेव चरामि
त्वत्पदोचितमवैमि न किंचित्॥१०॥

पनऽःनी अनुगृह पानऽः ही भगवन
ज्ञानऽः वति पनऽःनी प्यठ बऽः ओनऽथस
क्याज़ि छुस लूकवति प्यठ वनि गऽछ्य् गऽछ्य्
चऽऽन्य् पदवी ल्वगमुत नऽः ज़ानऽःनस॥१०॥

कोऽपि देव हृदि तेषु तावको
जृम्भते सुभगभाव उत्तमः।
त्वत्कथाम्बुदनिनादचातका
येन तेऽपि सुभगीकृताश्चिरम्॥११॥

ही दीवऽः उत्तम अलौक्यक आनन्द
स्वरूप चोन हृदिः फ्वलमुत इमन
'चानि कथा रूप, अकि नादऽः च़ेर ताम
समावीशऽः आनन्द रटान छु तिमन॥११॥

चऽऽन्य कथबात कुकिलि हून्द कू कू
कथताम स्वरूपस फाटवान तिमन॥ ११॥

त्वज्जुषां त्वयि कयापि लीलया
राग एष परिपोषमागतः।
यद्वियोगभुवि सङ्कथा तथा
संस्मृतिः फलति संगमोत्सवम्॥१२॥

चान्यन टाठ्यन दयि चोन अनुराग
चोन अलौक्यक अनुगृह, बडऽरावान
व्यथानस मंज़ ति महिमा सुमऽरित
तिम स्वरूपऽः समागम मनावान॥१२॥

"तेषां व्यवहृतौ समा सर्वत्र संस्थितिः"
सहज विचारस सार आसान

तथा

कुस ह्यकि वनिथई ब्वड चोन अनुगृह
कऽऽचाह अलौक्यक छस लीला
यस भक्तिज़नस छु सु फ्वलऽमुत
अदऽः छू व्यथानुक तस वेला
तथ मंज ति सू, चानि कथऽः कऽर्य कऽर्य
हर वक्तऽः चऽऽनी सुमरन फिरान
भ्यनरस मंज ति सुः ब्वड उत्सव
स्वरूपऽः समागम छु मनाबान॥१२॥

यो विचित्ररससेकवर्धितः
शङ्करेति शतशोऽप्युदीरितः।
शब्द आविशति तिर्यगाशये-
ष्वप्ययं नवनवप्रयोजनः॥१३॥

ते जयन्ति मुखमण्डले भ्रमन्
अस्ति येषु नियतं शिवध्वनिः।
यः शशीव प्रसृतोऽमृताशयात्
स्वादु संस्रवति चामृतं परम्॥१४॥

अजबई भक्ति रसऽः छु इवान हऽरऽःनस
शङ्करऽः नाव, सासऽः बऽद्य् लऽग्य ज़पनस।
बूज़थई शब्द प्वष ह्यू बेकऽल ति
न्वव न्वव प्रयोज़न ल्वगऽमुत छु करनस॥१३॥

जय जय तिमन इमन मुऽखऽः मण्डलस
शिव शिव शब्द ल्वग निरन्तर फेरनस।
चन्द्रमऽः की पऽऽठ्य् अमृतऽः शायि द्राव
अमृत ह्युव आनन्द स्वादिष्ट नेर्यस॥१४॥

परिसमाप्तमिवोग्रमिदं जगद्
विगलितोऽविरलो मनसो मलः।
तदपि नास्ति भवत्पुरगोपुरा-
र्गलकवाटविघट्टनमण्वपि॥१५॥

भीद रूप भयङ्कर जगत म्वकऽलोवुम्
बऽड्य् इम मल मनिक पूरऽः च़लऽरऽऽविम्।
लरि चानि तोर बन्द बरऽनई ज़ोरऽः छिम
अक रछा छिम नऽः वऽनि ति खुलान तिम्॥१५॥

सततफुल्लभवन्मुखपङ्कजो-
दरविलोकनलालसचेतसः।
किमपि तत्कुरु नाथ मनागिव
स्फुरसि येन ममाभिमुखस्थितिः॥१६॥

सर्वदा फ्वलऽमुत तुहुन्द मुऽखऽः कमला
वछहऽऽ पूरऽः पऽऽठ्य छम इः लालसा
अक रछ तवय चऽः करतऽः अनुगृहा
ठहऽरित ब्रोंठऽः कनि प्रकट नाथ गछ़तमा॥१६॥

परा शक्ती रूपऽः मुऽख छुस पम्पोश
सर्वदा फ्वलऽमुत इः सम्सारः पम्पोश
मंज़ अथ सार अक पानऽः शिवऽःनाथ छू
चंचल मनस म्येः सुई वछुन चाव छू (क)

सम्सारऽः निशि प्वत अचिना इ मन म्योन
ठऽहऽरित दर्शुन पूरऽः करिहे चोन

अनुगृह अक रछ च़ऽई करतऽः पानय
ठहऽरऽऽवित इः मन, पान हाव पानय (ख)

मनऽः कुई नचुन, ज़गऽतुक नचुन छू
मन धऽर्य् पऽऽठ्य् ठहऽरिः शिवनाथ न्वन छू
अक दयि सऽञ्ज दया दीनऽः गछि आसऽन्य्
लालसा दर्शनऽच मनस गछ़ि आसऽन्य् (ग)

दयि लोल दीनऽः भर मन ठहऽरऽऽवित
विश्वऽः मंज़ऽः शिव वछ मन ठहऽरऽऽवित (घ)

तथा

फ्वलऽमुत मुऽख चोन अख पमपोशः
मंज़ अथ क्याः, वारऽः बऽः वछऽः हा
मनस मंज भगवानऽः अभिलाश छम म्येः
ही नाथ अनुगृह अक रछ़ करतऽः म्येः
ब्रोड्ठऽः कनि वारऽः पऽऽठ्य् ठहरित पानय
फ्वलऽःवऽनि मुऽखऽः दितऽः दर्शुन पानय॥१६॥

त्वदऽविभेदमतेरपरं नु किं
सुखमिहास्ति विभूतिरथापरा।
तदिह तावकदासजनस्य किं
कुपथमेति मनः परिहृत्य ताम्॥१७॥

सम्सारस मंज़ चोन अभीद स्वरूपऽः ज्ञान
तमि ब्वड काञ्ह न सुऽख सम्पदा आसान
दासय बऽः चोन छुस क्याज़ि मन म्येः इवान
बदनाम वति कुन त्रऽऽवित स्व नय जान॥१७॥

क्षणमपीह न तावकदासतां
प्रति भवेयमहं किल भाजनम्।
भवदभेदरसासवमादरा-
दविरतं रसयेयमहं न चेत्॥१८॥

अभीद आनन्दऽः रूप चऽऽन्य् म्वदऽर मदिरा
चमऽः नय अछ़्चनऽः धारि, करस नय कदरा
दासऽः भावुक भानऽः छुम्नऽः त्यलि अक ज़रा
सातऽः सातऽः हावतम अभीद रूप ही हरा॥१८॥

न किल पश्यति सत्यमयं जन-
स्तव वपुर्द्वयदृष्टिमलीमसः।
तदपि सर्वविदाश्रितवत्सलः
किमिदमारटितं न शृणोषि मे॥१९॥

भीदऽः मलऽः इः ज़ीवः अऽछ्य् अनिरऽऽवित
किथऽः ह्येकि च़ऽः चिदात्मा परज़ऽनऽऽवित
सोरुई ज़ऽऽनित भक्त-वत्सल अऽऽसित
कोनऽः च़ऽः अऽऽर्च़रस, म्येः छुख कन दऽऽरित॥१९॥

स्मरसि नाथ कदाचिदपीहितं
विषयसौख्यमथापि मयार्थितम्।
सततमेव भवद्वपुरीक्षणा-
मृतमभीष्टमलं मम देहि तत्॥२०॥

याद पाव छुमऽः ज़ाञ्ह व्यषियिः सुऽख कोञ्छमुत
या ही शम्भू सुई च़्येः मुङ्गऽमुत
चोन स्वरूपऽः दर्शुन, अमृत म्येः मोन्मुत
निरन्तर सुई ग्वछुम दिम जलजल नाथ॥२०॥

किल यदैव शिवाध्वनि तावके
कृतपदोऽस्मि महेश तवेच्छया।
शुभशतान्युदितानि तदैव मे
किमपरं मृगये भवतः प्रभो॥२१॥

पऽज़्य् कथ छि, यमी द्वहऽः कल्यानऽः वति चानि
ही महेश चानि हुक्मऽः थौव म्येः कदम अख
तमी सातऽः हतऽः बऽद्य् रऽच़र आम बुदऽयस
ब्ययि क्याः च़्येः बऽः मंगऽः वनतऽः च़ऽई ही नाथ॥२१॥

यत्र सोऽस्तमयमेति विवस्वाँ-
श्चन्द्रमः-प्रभृतिभिः सह सर्वैः।

कापि सा विजयते शिवरात्रिः
स्वप्रभाप्रसरभास्वररूपा॥२२॥

पदार्थ

अलौक्यक कल्यानुक समयाः कुसताम
सिर्यिः चन्द्रमऽः तारक लय तऽथ्य् गछान
¹चिदानन्दऽः जित्निः तथ छि नेरान
ज़ोतऽः वनि तऽथ्य् शिवरात्री नमस्कार॥२२॥

१. पनऽःन्यौ चिदानन्दऽः ज़ितिन्यौ ज़ोतान
तीज़वान तऽथय शिवरात्री नमस्कार॥

भावार्थ

प्रमेय रूप चन्द्रमऽः जगत युस आसान
प्रमाण गव सिर्यिः सोरुई हावान
अग्नऽः रूप प्रमाता स्वात्मा आसान
प्रमेय त प्रमान तऽथ्य् मंज़ हूमान
संकल्प विकल्प ति तऽथ्य् मंज त्रावान
पूर्ण समऽऽज़ मंज़ शिव पानऽः बनान
अती चिदानन्दऽः प्रकाशः प्रकऽटान
शिवऽः शक्तीय ज़ितिन्यौ सऽऽत्य ज़ोतान
शिवऽरात्री सुई गयिः दीनऽः कन थव
वृऽच्य् गऽऽलित ज़ीव परमऽः आनन्द प्रावान
अमृत इहोय गव धैर्यवानई च्यवान
तत त तमिक्यन च्यनऽः वाल्यन नमस्कार॥

तथा

प्रमेय गव चन्द्रमऽः सिर्यि गव प्रमान
अग्नऽः रूप प्रमातस, मंज़ लय करान
प्रमेय गव चन्द्रमऽः ज़गत वछनऽः इवान
प्रमाण गव सिर्यिः युस वछऽनावान (क)
प्रमता गव अग्नी वछन वोल आसान
प्राण-अपानस ति चन्द्र-सिर्यि वनान

अग्न रूप स्वात्मा सऽन्ज़ मंज़ आसान
प्रमेय त प्रमान तऽथ्य् हुम्णऽः इवान (ख)

साधक शष्य रूप ग्वरस निश हच्छित
यमि सातन इ अग्न अनुभव छु करान
सुई गव असऽल सात साक्षात्कारुक
कल्याणमय शिवरात्री तऽथ्य छि वनान (ग)

शिवरात्री परवऽः द्वहऽः चन्द्रमऽः सिर्यिः
कुम्ब राशि मंज यकज़ाह आसान
कुम्व गव न्वट तवय शिवरात्री प्यठ
संकल्प विकल्प डून्य् तऽथ्य् छि भरान (घ)

न्यभर्युम सिर्यि चन्द्रमऽः कुम्भ राशि आसान
यूगी अन्दरिम तिम सऽन्ज़ मंज़ पूज़ान (ङ)

प्राण त अपान आणव उपायि किन
प्रमेय त प्रमान शाक्तोपायि किन
प्रकाश व्यमर्श शाम्भवपायि वति
अग्नऽः रूप स्वात्मस शिवस लय सपदान (च)

अऽथ्य् शिव रात्री श्री उत्पल दीव
तीज़ऽः वान ज़ऽऽनित तीज़स पूज़ान (छ)

द्वादश कऽऽली मंज़ ग्वडऽनिक च़ोर श्लूक
प्रमेय रूप चन्द्रमऽः नऽन्य् पऽऽठ्य् हावान
द्वयिम च़ोर श्लूक सिर्यि रूप प्रमाण
किथऽः पऽऽठ्य् अर्चान ती छिः हावान (ज)

त्र्ययिम च़ोर श्लूक अग्नऽः रूप प्रमाता
सऽऽतिन करित ज़ान तऽथ्य पूरऽः पूज़ान (झ)

परमार्थसार परात्रिंशिका तिः
सौः भीज़ व्यछ़ऽनिथ इहऽऽय कथ छि वनान
प्राण अपान रूपऽः किन सोन ग्वरऽः दीव तिः
सारिनई श्यशन इहऽऽय वत हावान (ञ)

पनऽःनी तीज़ऽः सऽऽत्य स्वात्मा ज़ोतान
सुई ह्यसऽः तीज़ असली पूज़ऽःनी आसान
यस ईश्वर-स्वरूपस इः कृया गछि स्यद्ध
तस कुस वाति भैरव गव सुई स्यद्ध
दीन छु सिरिफ (तऽस्य) ग्वरऽः दीवस नमान
तऽम्य् सुन्दई ध्यान करित सु ति, छु अज़ फ्वलान॥२२॥

अप्युपार्जितमहं त्रिषु लोके-
ष्वाधिपत्यममरेश्वर मन्ये।
नीरसं तदखिलं भवदङ्घ्रि-
स्पर्शनामृतरसेन विहीनम्॥२३॥

ही अमरीश्वरऽः अगर ज़ाञ्ह प्रावऽः बऽः
त्र्यन लूकन हुन्द पूरऽः राज-ताज
चानिः चरनऽः स्पर्शऽः भ्युन सु बेमज़ऽः
बेकार छुनऽः म्येः बिल्कुल-सु बकार॥२३॥

बत नाथ दृढोऽयमात्मबन्धो
भवदख्यातिमयस्त्वयैव क्लृप्तः।
यदयं प्रथमानमेव मे त्वा-
मवधीर्य श्लथते न लेशतोऽपि॥२४॥

कोताः सखऽत छु मानसिक इः गण्ड
स्वरूप खटनऽः खऽऽतऽरऽः छुनमुत च़्येः प्रभू
भासऽमानस च़्येः ज़ऽऽरी करित तिः
(ननिस भगवानस च़्येः ज़ऽऽरी करित तिः)
अख मुय इः गण्ड नऽः बिलकुल ढ्यलान म्येः॥२४॥

महताममरेश पूज्यमानो-
ऽप्यनिशं तिष्ठसि पूजकैकरूपः।
बहिरन्तरपीह दृश्यमानः
स्फुरसि द्रष्टृशरीर एव शश्वत्॥२५॥

निरनतर पूज़नऽः इवऽवुन ति अमरेशः
भऽक्तयन च़ऽः प्रकटान पूज़ऽःवोनई
अन्द्रऽः न्यब्रऽः यथ जगतस मंज़
वुछनऽः इवऽःवुन सदा वुछनवोलई॥२५॥

उपसंहार

भगवानऽः म्यानि ही इश्वरस्वरूप जी
कमि अऽऽसऽः वऽः तुता करऽः तुहऽञ्ज़ई
अलौक्यक कृपा छयम किथऽः पऽऽठ्य गंज़रावऽः
स्यठाह थऽद्य् ग्वण इम तुहऽन्द्य् सऽऽरी
अज़ छुम म्येः ब्वड दोह चूर्युम स्तूत्र
परित म्वकऽल्योस बऽ दयायि तुहऽञ्ज़ी
श्री उत्पलदीवस ब्ययि खेमराजस
जयजय करान दयायि तुहऽञ्जी
दीन छुस ग्वल्य् गंडित ज़ारऽः पारऽः करान
ब्रोंह कुन ग्वछ़ पकुन दयायि तुहऽञ्ज़ी॥

स्वबलनिदेशनाख्यं पञ्चमं स्तोत्रम्

श्री ईश्वरस्वरूपाय नमः
पाचवें स्तोत्र के आधार पर "दीन" के भाव

गुरुदेव मेरे सुनो मेरी बिनती
तुझ बिन कौन करे मेरी उन्नति
सब शास्त्रन का मंथन कर के
परमामृत स्वात्म तत्त्व निकले॥ (क)

दया दृष्टि आप की वह ही देवे
बलवान आप की कृपा है इतनी
जिन के आप हैं मोक्ष प्रदाता
करोड़ जन्मों का शुभ फल पाता॥ (ख)

सब कुछ वह जग में है पाता
चाहे ख्वाहिश उसकी कितनी

मुझ पर दया हो करते आप
तभी तो पढ़ता मैं आप ही आप
आप के दासों का मैं दास
कम है करूं में बिनती जितनी॥ (ग)

चार स्तोत्र पढ़ लिए हैं
कशमीरी में रट लिए हैं
आरम्भ आज पांचवां करता
पूर्ण कर लो मेरी उन्नति॥ (घ)

जय ईश्वरस्वरूप जय मेरे दाता
शक्ति दो मुझे, हे मेरे दाता
जलदी जिस से आप (स्वात्मा) को पाता
गुरुओं की है यह ही रीति॥ (ङ)

त्वत्पादपद्मसम्पर्कमात्रसम्भोगसङ्गिनम्।
गलेपादिकया नाथ मां स्ववेश्म प्रवेशय॥१॥

पनऽःनिस चित्‌रूपऽः घरऽःसई मंज़ म्येः
हठशक्तिपातऽः किन करऽनाव प्रवीश
ल्वगऽमुत छुस स्पर्शऽः स्वाद करनस
चान्यन पादि कमलन ही महीश॥१॥

तथा

दीत्ती चानि समावीशऽः स्वादस
मंज़ ल्वगमुत अज़ बऽः ही प्रभू
हठशक्तिपातऽः क्रमऽः किन पानय
चित्‌रूपऽः लरि मंज़ दिम जाय नाथ॥१॥

भवत्पादाम्बुजरजोराजिरञ्जितमूर्धजः।
अपाररभसारब्धनर्तनः स्यामहं कदा॥२॥

चानि चरणऽः कमलन हंज़ि गर्दि सऽऽतिन
कर आसि रणगनऽः आमुत म्योन मस[१]

१. मस = बाल

युथ हर्शऽः ज़ोरऽः बरबुकऽः आमुत
नऽच़्य् नऽच़्य चमऽः चानि लोलुक मस[१]॥२॥

त्वदेकनाथो भगवन्नियदेवार्थये सदा।
त्वदन्तर्वसतिर्मूको भवेयं मान्यथा बुधः॥३॥

ही म्यानि भगवानऽः छुक च़ऽः म्योन दाता
मंगऽवुन छुस बऽः दया प्यूञ्ता सदा
च़ऽई मंजबाग बऽः क्वल तऽ ज़्वर रोज़ऽहा
न्यबर्युम गाटऽजार गवछुम न अखज़रा ज़रा॥३॥

अहो सुधानिधे स्वामिन् अहो मृष्ट त्रिलोचन।
अहो स्वादो विरूपाक्षेत्येव नृत्येयमारटन्॥४॥

ही ईश्वरऽः ही आनन्द सागराः
चमत्कार स्वरूपऽः त्रनेत्रेश्वराः
म्वदऽरिस ब्वथिस छय अछ्य् खोफनाखः
ई वऽन्य् वऽन्य् बनऽःहऽऽ (बऽः) नच़न-ग्वराः॥४॥

त्वपादपद्मसंस्पर्शपरिमीलितलोचनः।
विजृम्भेय भवद्भक्तिमदिरामदघूर्णितः॥५॥

पादिकमलन चान्यन स्पर्शऽः सऽऽती
यन्दर्ययि अन्तरमुऽख म्येः गछितन
भक्ती चानि हऽन्ज़ मुऽदर मदिरा च्यत
मुत्वालऽः शरीर नऽच़्य् नऽच़्य नच़ितन॥५॥

चित्तभूभृद्भुवि विभो वसेयं क्वापि यत्र सा।
निरन्तरत्वत्प्रलापमयी वृत्तिर्महारसा॥६॥

ही व्यापक प्रभू च़्यत परवतऽः चिः
तत् जायिः बऽः, रोज़ऽः हऽऽ न्यथ।
स्वरूपऽः प्रामर्श अलौक्यक आनन्द
चोन छयनऽः रुउस, आसान यत॥६॥

यत्र देवीसमेतस्त्वमासौधादा च गोपुरात्।
बहुरूपः स्थितस्तस्मिन्वास्तव्यः स्यामहं पुरे॥७॥

१. मस = मस्ती देकर बाहोश बनाने वाला अमृतमय आसव

रोज़ऽहऽऽ ़च्यतरूपस (ह्यसऽःजायि) मंज़ यति च़ऽः
पराशक्तियिः सऽऽत्य बहुरूपऽः रोज़ान
अन्दरिमिः परप्रमाता (स्वात्मा) भवनऽः प्यटऽः
इन्द्रययिः रूपऽः व्यषियिः द्वारस ताम॥७॥

समुल्लसन्तु भगवन् भवद्भानुमरीचयः।
विकसत्वेष यावन्मे हृत्पद्मः पूजनाय ते॥८॥

युत ताम हृदयिः कमल म्योन भगऽवानऽः
चानि पूज़ायि खऽऽतरऽः वारऽः फ्वलिहे-
अनुगृहऽः सिर्यि रूपऽः ज़ऽच़ऽः चानि पूरऽःपऽऽठ्य्
त्वत्ताम ब्ययि ब्ययि प्ययितन मे॥८॥

प्रसीद भगवन् येन त्वत्पदे पतितं सदा।
मनो मे तत्तदास्वाद्य क्षीवेदिव गलेदिव॥९॥

खुऽश म्येः गछतम भगवानऽः युथ जन
चरनन तल ़च्येः प्योमुत इः मन
रऽच़ऽः रऽच़ऽः अवस्थायि अनुभव करिथऽई
़च्यई मंज़ लय गछि स्वरऽःमुत ज़न॥९॥

भगवान म्योन, युस ऐश्वीर्यः सम्पन्न
खुऽश म्येः गछितन युत ईः म्योन मन
परन युस ख्वरन तस प्योमुत सदा छू
शरन युस तमिसई गोमुत सदा छू
रऽच़ऽः रऽच़ः अवस्थायि अनुभव करिहे
लोलऽः सऽऽतिन मतित तऽथ्य मंज गलिहे॥९॥

प्रहर्षाद्वाथ शोकाद्वा यदि कुड्याद्धटादपि।
बाह्यादथान्तराद्भावात्प्रकटीभव मे प्रभो॥१०॥

ख्वश आसनऽः मंज़ऽः गमऽः फिकिरिः मंज़ऽः
नटिः मंजऽः लबि मंज़ऽः कुनिः तिः चीज़ऽः मंज़ऽ
न्यब्रम्यौ चीज़ौ, अन्दऽर्य् भावौ मंजऽः
न्वन म्येः भास्तम प्रथ विज़ि ही नाथ॥१०॥

बहिरप्यन्तरपि तत्स्यन्दमानं सदास्तु मे।
भवत्पादाम्बुजस्पर्शामृतमत्यन्तशीतलम्॥११॥

चान्यन चरणऽः कमलन हुन्द स्पर्शः रूप
अमृत प्रथ विज़िः रूज़तन म्येः व्याप्त
ही म्यानि भगवानऽः न्यब्रऽः अन्द्रऽः वसऽवुन
इः शीतल अमृत रूज़तन म्येः प्राप्त॥११॥

तथा

चान्यन चरणऽः कमलन हुन्द स्पर्शऽः रूप
अत्यन्त शीतल अमृत प्रभू
अन्द्रऽः न्यब्रऽः आसान वरशा वसान
अऽऽसतन सर्वदा म्येः प्राप्त ही नाथ॥११॥

त्वत्पादसंस्पर्शसुधासरसोऽन्तर्निमज्जनम्।
कोऽप्येष सर्वसम्भोगलङ्घी भोगोऽस्तु मे सदा॥१२॥

शक्ति समावीष चरणऽः स्पर्शः रूप
परमानन्दऽः रसुक अमृतऽः सदराः
तऽथ्य् मंज़ फटऽःनुक थुद अलौक्यक भूग
ग्वछ म्येः आसुन प्राप्त, सर्वदा ही नाथ॥१२॥

निवेदितमुपादत्स्व रागादि भगवन्मया।
आदाय चामृतीकृत्य भुङ्क्ष्व भक्तजनैःसमम्॥१३॥

संसार बननऽः प्यठऽ स्वम्भरऽऽवमऽत्य् म्येः
राग द्वीश ब्ययि ब्ययिः कम कम च़ीज
कऽरिमय अर्पन, रटित, अमृत बनऽऽवित
ख्यतऽः भक्तिज़न ह्यत, गऽऽलित द्वयतऽः बीज़॥१३॥

श्री सतुगुरु प्रणाम

वाः वा शिवनाथऽः लगऽहऽऽय बऽ पादन
ग्वरस कुन नमस्कार ब्ययि करिथई॥१॥

तऽम्य् सऽञ्ज़ई दया छयम् सुऽइ चऽऽन्य् ति गइः
रोज़ऽःहऽऽ तंऽस्य् कुन गुल्य् गऽत्रिथई॥२॥

कऽर्य् कऽर्य् न करऽवुन छुई सु ग्वर म्योन
सऽऽरिसई ज़गतस छु रछिथई॥३॥

बऽर्य बऽर्य यूत लोल तस, बऽः बरऽहऽऽ
त्यूत छुम तोति म्येः कम अऽऽसिथई॥४॥

अशेषभुवनाहारनित्यतृप्तः सुखासनम्।
स्वामिन् गृहाण दासेषु प्रसादालोकनक्षणम्॥१४॥

ही मऽऽलिकऽः सारिनई भवनन च़ऽः
करित ग्रास तृप्त परमानन्दऽः घन
दासन आनन्ददा अनुगृह नज़राह
करनऽः खऽऽतरऽः समयः छाङ्डतन॥१४॥

अन्तर्भक्तिचमत्कारचर्वणामीलितेक्षणः।
नमो मह्यं शिवायेति पूजयन् स्यां तृणान्यपि॥१५॥

अहं परामर्श रूप अन्दरिमि भक्ती
चमत्कारऽः स्वादऽः अऽछ्य् वटिथई।
यऽऽनी अन्तर्मुख भावस स्वात्मस कुन
इन्दर्यिः ह्यसः पूज़ायि लऽऽगिथई।
अऽथ्य् मंज़ अहमस स्वात्मस शिवस
प्रणामः रोजऽःहऽऽ सर्वदा करिथई।
गासऽः तुजि मंज़ ति सुई शिव वऽछ्य् वऽछ्य्
रोज़ऽहऽऽ तऽस्य् पूज़ऽऽर्य बनिथई॥१५॥

अपि लब्धभवद्भावः स्वात्मोल्लासमयं जगत्।
पश्यन् भक्तिरसाभोगैर्भवेयमवियोजितः॥१६॥

अद्वयतऽः आनन्द ति चोन क्वर म्येः प्राप्त
जगतस इः स्वात्मा वारऽः पऽऽठ्य् वुछुम व्याप्त
तोति छुस भगवानऽः च्येः करान बिनती
भक्ति रसः भूगऽः हीन, इनऽः आसऽः ज़ाञ्ह तिः॥१६॥

आकाङ्क्षणीयमपरं येन नाथ न विद्यते।
तव तेनाद्वितीयस्य युक्तं यत्परिपूर्णता॥१७॥

कुनि ब्ययि चीज़ऽच कांक्षा ति छय नऽः नाथ
कान्ह चीज़ कुनि क्युत कम च्येः छुई न नाथ।
तवय च्येः पूर्ण शास्त्रौ व्वनऽः हय
ही जोरऽः रसितिः च़ऽई योत छुख पूरऽः नाथ॥१७॥

हस्यते नृत्यते यत्र रागद्वेषादि भुज्यते।
पीयते भक्तिपीयूषरसस्तत्प्राप्नुयां पदम्॥१८॥

ही प्रभू स्वरूपऽः समावेशऽच्य् दशा
यथ मंज असान त गिन्दान छू मन नच़ान
राग द्वीष खिये खिये, भक्ति अमृत च्यवान
प्राप्त म्येः रूज़तन हर वक्तऽः विज़ि नाथ॥१८॥

तत्तदपूर्वामोद-
त्वच्चिन्ताकुसुमवासना दृढताम्।
एतु मम मनसि याव-
न्नश्यतु दुर्वासनागन्धः॥१९॥

कमिताम अलौक्यक आनन्दऽः भरिथई
चानि चिन्तनऽः पोशिच इः सुगन्धी
इयिः तन तऽ म्यऽऽनिस मनस मंज़ रूज़तन
युतताम गलिहे क्ववासना गन्धगी॥१९॥

क्व नु रागादिषु रागः
क्व च हरचरणाम्बुजेषु रागित्वम्।
इत्थं विरोधरसिकं
बोधय हितममर मे हृदयम्॥२०॥

व्यशियन हुन्द राग, लौल चानि चरनुक
इमन द्वन ही अमरऽः कति ज़ाञ्ह वाट
कल्यानऽः खऽऽतऽरऽः मनस फिकिरि तारतम्
द्वनवय क्याज़ि करान छिः सटऽः वाट॥
दासय बऽः चान्यन चरणऽः कमलन छुस
क्याज़ि व्यषियिः कांक्षा ज़ाञ्ह उपदान
दासऽःभाव क्ववासना किथऽः कऽन्य् मेलान?
विश्वतीर्न किथऽः, विश्वमय बनान नाथ॥२०॥

विचरन्योगदशास्वपि
विषयव्यावृत्तिवर्तमानोऽपि।
त्वच्चिन्तामदिरामद-
तरलीकृतहृदय एव स्याम्॥२१॥

मस्त आसऽः बऽः यूगऽः दशाय मंज़ नच़ान
व्यषियौ निशिः आसऽः मन बऽः च़टऽःवुन
तथ मंज़ ति चऽऽन्य चिन्तनः मसती च्यथ
रूज़तन हृदय चंचल, नच़ऽःवुन नाथ॥२१॥

वाचि मनोमतिषु तथा
शरीरचेष्टासु करणरचितासु।
सर्वत्र सर्वदा मे
पुरःसरो भवतु भक्तिरसः॥२२॥

ज़्यवि या मनऽः किन ब्वज़ इन्द्रियौ किन
कुनि वति करितन शरीर कारुबार
प्रथ अवस्थायि मंज़, भक्तिअमृत सदा
सऽऽत्य् सऽऽत्य् रूज़तन, म्येः यार ही नाथ॥२२॥

शिव-शिव-शिवेति नामनि
तव निरवधि नाथ जप्यमानेऽस्मिन्।
आस्वादयन् भवेयं
कमपि महारसमपुनरुक्तम्॥२३॥

नाथऽः म्यानि चऽऽनिस शिव शिव शिव शिवऽः
नावुक लगातार ज़प करऽःवुन
अलौक्यक नऽव्य् नऽव्य् परमार्थिक रस
रोज़ऽहऽऽ स्वाद करऽःवुन बऽः ही नाथ॥२३॥

स्फुरदनन्तचिदात्मकविष्टपे
परिनिपीतसमस्तजडाध्वनि।
अगणितापरचिन्मयगण्डिके
प्रविचरेयमहं भवतोऽर्चिता॥२४॥

यमि सऽऽत्य सोरुई जड जगत नशटान
स्वरूपऽः न्यबर काञ्ह भाव मुजराह, न ईवान
चैतन्य (ह्यसऽःरूप) महल चोन बेहद चमकान
तऽथ्य् मंज़ नच़ऽहऽऽ, पूज़ा करान नाथ॥२४॥

तथा

प्रमेय रूप ज़गऽतऽक्य् सऽऽरी त्वत यति
प्रमाता अग्नस मंज छि दज़ान
स्वात्मा चितरूपऽः भ्यन काञ्ह भावना
तति छयनऽः ज़ाञ्ह ति भोज़नऽः इवान
बेहद चमकान ह्यसऽः महलखानः
तऽथ्य मंज़ नचऽःहऽऽ च़ई पूज़ान नाथ॥२४॥

स्ववपुषि स्फुटभासिनि शाश्वते
स्थितिकृते न किमप्युपयुज्यते।
इति मतिः सुदृढा भवतात् परं
मम भवच्चरणाब्जरजः शुचेः॥२५॥

बेअन्त प्रकाशऽः रूप अविनऽऽशी
चिदानन्दऽः स्वरूप पनुन यऽम्य् ज़ोन
तस अदऽः ध्यान जप बगैरऽः केन्ह तिः
मायिक भाव छुनऽः आसान बरोन
चानि चरणऽः कमलऽः गर्दि सऽऽत्य श्रूचिस
म्यति म्यानि श्री, शिवनाथ जी
सुऽदशा बनिथ, दऽर्य पऽऽठ्य् ठीक्यतन
मङ्गान छुस बस ती बऽः, ही शिवनाथ॥२५॥

किमपि नाथ कदाचन चेतसि
स्फुरति तद्भवदंघ्रितलस्पृशाम्।
गलति यत्र समस्तमिदं सुधा-
सरसि विश्वमिदं दिश मे सदा॥२६॥

तलऽःपुद चानि चरणऽःकमलुक लगिथई
भक्तिस युसऽः क्वसऽताम अवस्था प्रकटान

सोरुई भीदऽः रूप मायिक सम्सार
चिदानन्दऽः अमृतऽः सरस लय छु गछान
सुऽई समऽऽज़ हऽञ्ज्य् शूभिदार अवस्था
करतऽः सर्वदा प्रदान म्यति, ही नाथ॥२६॥

उपसंहार

ही म्यानि गुरुदेव ही ईश्वर-स्वरूप
मऽञ्य् मऽञ्य् छुसय ई च्येः मंगान
कलस म्यऽऽनिस प्यठ पननि पादि कमलऽच्य्
गरदऽः ब्ययि ब्ययि रोज़ त्रावान
वथ छ्यम व्यज़ चऽऽनी यऽऽच्य् म्येः
जल जल आस्तम बर मच़ऽरान
दीन छुस दास चोन नोकर कमज़ोर
न्यब्रऽः कनिः कोताह रोज़ऽः प्रारान
हठ शक्ति पातऽः योग, गव दया दृष्टी
सुऽई वारऽः पऽऽठ्य् आस्तम त्रावान
चिदानन्दऽः अमृतऽः सरसऽई जलजल
दया धकऽः दित आस्तम फाटऽवान
ही स्वामी म्ये शक्ती छयम न केन्ह
शक्ति पातस छुई दीनऽः प्रारान
ॐ श्री ईश्वरस्वरूपाय नमः

अध्वविस्फुरणाख्यं षष्ठं स्तोत्रम्

छटे स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव
श्री ईश्वरस्वरूप भगवान की जय-जय-जय

क्षणमात्रमपीशान वियुक्तस्य त्वया मम।
निबिडं तप्यमानस्य सदा भूया दृशः पदम्॥१॥

अकि क्षणऽः भ्यनर चोन वस छुम म्येः ज़ालान
अऽछय् म्यानि हरवक्तऽः दर्शुन बनतऽः नाथ।
च्ये निशि दूर्यर तप छुम म्येः खारान
ज्ञानऽः अऽछय् बऽः वछऽहऽऽथ द्रेण्ठ, जल इतऽः नाथ॥१॥

वियोगसारे संसारे प्रियेण प्रभुणा त्वया।
अवियुक्तः सदैव स्यां जगतापि वियोजितः॥२॥

अऽऽखऽरस जुदऽऽई, सार सम्सारस
स्वात्मा शिव च़ऽः, यति, टोठ मनऽशस
यथ मंज़ रूज़ित ति, ही भगऽवानऽः
च़्यऽई सऽऽत्य अभिन्न, रोजऽहऽऽ प्रथ सातस॥२॥

तथा

वियोगसार दार, सम्सारस मंज़
सारी ख्वतऽः टोठ, आसान च़ऽई नाथ
यथ मंज़ सन्यास, अलग रूज़ित ति
सर्वदा च़्येः निश अभिन्न, रोज़ऽहऽऽ नाथ॥२॥

कायवाङ्मनसैर्यत्र यामि सर्वं त्वमेव तत्।
इत्येष परमार्थोऽपि परिपूर्णोऽस्तु मे सदा॥३॥

दीह वऽऽनी या मनऽः किन ख्वत वातऽः
सु छु चोनुई योत स्वरूप ही शिवऽः नाथ
यहोय परमार्थ, समावीशऽः वथ साफ
सर्वदा म्येः रूज़तन पूरऽः स्यद्ध ही नाथ॥३॥

निर्विकल्पो महानन्दपूर्णो यद्वद्भवांस्तथा।
भवत्स्तुतिकरी भूयादनुरूपैव वाङ्मम॥४॥

इथऽः पऽऽठय् निर्विकल्प तऽ परमानन्दऽः भरित
सर्वदा च़ऽः पानऽः आसान छुक नाथ।
त्वता चऽऽन्य् करऽवऽन्य् म्यऽऽन्य् इः वऽऽनी
तमी रूपऽः च़्यई हिश बनितन ही नाथ॥४॥

भवदावेशतः पश्यन् भावं भावं भवन्मयम्।
विचरेयं निराकाङ्क्षः प्रहर्षपरिपूरितः॥५॥

चऽऽनिस स्वरूपस मंज़ समावेशऽः किन
सोरुई बऽ ज़ानऽहऽऽ चोनुई स्वरूप
कुनि कांक्षायि रुउस परमानन्दऽः भ्वर
ख्वश त पूर्ण फेरऽः थोरऽःहऽऽ बऽः नाथ॥५॥

भगवन्भवतः पूर्णं पश्येयमखिलं जगत्।
तावतैवास्मि सन्तुष्टस्ततो न परिखिद्यसे॥६॥

स्वरूपऽः चानि सऽऽत्य्, परिपूर्ण बऽ वछऽहऽऽन
सोरुइ इः सम्सार, वारऽः पऽऽठ्य् ही नाथ।
परमानन्दऽः सऽऽत्य्, सन्तुष्ट, बऽ गछऽहऽऽ
च़ऽति ब्ययि इखनऽः टङ्गऽः, पतऽः केञ्ह ही नाथ॥६॥

विलीयमानास्त्वय्येव व्योम्नि मेघलवा इव।
भावा विभान्तु मे शश्वत्क्रमनैर्मल्यगामिनः॥७॥

आकाशस मंज उब्रऽः लङ्गिक पऽऽठ्य्
क्रमऽः क्रमऽः न्यर्मलतायि वऽऽतमऽत्य् नाथ।
सम्सारऽक्य् सऽऽरी भाव लीन च्यऽई मंज
भासऽन्य् गऽछय् म्येः, सर्वदा ही नाथ॥७॥

स्वप्रभाप्रसरध्वस्तापर्यन्तध्वान्तसन्ततिः।
सन्ततं भातु मे कोऽपि भवमध्याद्भवन्मणिः॥८॥

गोन् अज्ञानः अन्धकार, मूलऽः म्वङिजः गालान
अलौक्यक स्वरूप, चिन्तामण रतनऽः गाश
सम्सारऽसई मंज़, हरवक्तऽः हर समय
ग्वछ़ म्येः आसुन प्राप्त, ही म्यानि शिवनाथ॥८॥

कां भूमिकां नाधिशेषे किं तत्स्याद्यत्र ते वपुः।
श्रान्तस्तेनाप्रयासेन सर्वतस्त्वामवाप्नुयाम्॥९॥

छा काञ्ह अवस्था यथ नऽः मंज च़ऽः रोज़ान
कुस छु सु वस्तू, चोन स्वरूप न आसान नाथ।
सम्सारस मंज फ्वटऽःमुत दुखी छुस
क्या इतऽः प्रथ जायि हंगऽः मंगऽः, अथि नाथ॥९॥

भवदङ्गपरिष्वङ्गसम्भोगः स्वेच्छयैव मे।
घटतामियति प्राप्ते किं नाथ न जितं मया॥१०॥

पनऽःनी मरज़ियिः चऽऽनिस स्वरूपस
नालऽःमऽत्य् कऽर्य-कऽर्य आनन्द लूटऽःहऽऽ।
इहऽऽय कथ यलिः म्येः स्यद्ध वारऽः गछि हे
पतऽः वन्तऽः क्या म्येः, ज़्योन नऽः ही नाथ॥१०॥

प्रकटीभव नान्याभिः प्रार्थनाभिः कदर्थनाः।
कुर्मस्ते नाथ नाम्यन्तस्त्वामेव मृगयामहे॥११॥

गछ प्रकट हाव साक्षात्कार स्वरूप
कष्ट छुसय न केन्ह दिवान, ब्ययि केन्ह मङ्गित
दुऽख छुम म्येः अख दूर्यर चोन प्रभू
अऽछ्य् म्ये लजि मच़ऽः दरस, चानि वति कुन नाथ॥११॥

विधुरविजयनामधेयं सप्तमं स्तोत्रम्

जय गुरुदेव

सातवे स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

त्वय्यानन्दसरस्वति
समरसतामेत्य नाथ मम चेतः।
परिहरतु सकृदियन्तं
भेदाधीनं महानर्थम्॥१॥

आनन्द सागरऽः ही म्यानि स्वामी
प्रऽऽवित ईकता च्येः सऽऽत्य् म्योन मन।
यकदम पूरऽः पऽऽठ्य् दूर जल करितन
भीदऽः मंज़ऽः नेरऽवऽनिः आपऽदायि घन॥१॥

तथा

च़्येः चिदानन्दऽः सरऽसई मंज़ इः मन म्योन
फटितन त प्रऽऽवितन तऽत्य् इकता
युथ इकऽःवटऽः दूर त्रऽऽवित छनिहे
भीदऽः मंज़ऽः द्रामऽच़्य् इः बऽड आपदा॥१॥

एतन्मम न त्विदमिति
रागद्वेषादिनिगडदृढमूले।
नाथ भवन्मयतैक्य-
प्रत्ययपरशुः पतत्वन्तः॥२॥

ग्वछ म्येः इः तऽः इः न केन्ह, इहोय सोचा
प्योमुत म्येः रागऽः द्वेषऽच्य् फऽऽञ्स्या
यछ़ त पछ़ स्वरूपऽः चानिच इकता
प्यइतन अथ मूलऽः मुञ्जऽः मकज़ा॥२॥

तथा

ख्वश छुम इः करान हु छुम खरान
राग द्वीष, स्वरूपऽःलाभस छिम फरान
च्येः सऽऽत्य् अभिन्न छुस, इः अनुभवा
मल त्रेः म्येः च़टितन ज़न मकज़ाः॥२॥

गलतु विकल्पकलङ्कावली
समुल्लसतु हृदि निरर्गलता।
भगवन्नानन्दरस-
प्लुतास्तु मे चिन्मयी मूर्तिः॥३॥

विकल्पन हुन्द कलङ्क म्येः जल जल गलितन
स्वतन्त्रता हृदयस पूरऽः बनितन
चैतन्यमय म्यऽऽन्य् मूर्ती भगवन
चिदानन्दऽः रसऽः सगऽः वारऽः फ्वलितन॥३॥

तथा

लोल ग्वछ म्येः शिव सुन्द ग्वरऽः भक्ती रूप
त्यलि छुस न कुनि वति नादार
ही म्यानि भगवानऽः करतम म्ये यऽऽरी
परन छुस प्यवान च़्यई बारम्बार॥३॥

रागादिमयभवाण्डक-
लुठितं त्वद्भक्तिभावनाम्बिका तैस्तैः।
आप्याययतु रसैर्मां
प्रवृद्धपक्षो यथा भवामि खगः॥४॥

रागऽः द्वेषऽः भरितिस जगत ठूलस मंज़
बन्द गोमुत बऽः जानावार
मऽऽज, भक्ती चऽऽन्य्, अमृतऽः सऽऽतिन
सग दित म्येः करितन वुडऽवुन तयार॥४॥

पखऽः इत व वुडऽःहऽऽ चिताकाशश
सम्सार वुछऽःहऽऽन क्युथ छु ब्वड नार
सग स्वऽई दियिः म्येः अद्वयतऽः वादुक
युथ बऽति गछऽः पूरऽः पऽऽठय् बेदार॥४क॥

नार म्योन शहऽलाविः स्वऽई चऽऽन्य् भक्ती
द्वयितस करि स्वऽई पूरऽः संहार
ज़ाग्रत स्वपुन तय स्वशफती त्रनऽःवय
तुर्यस मंज़ करि पूरऽः हम्वार॥४ख॥

त्वच्चरणभावनामृत-
रससारास्वादनैपुणं लभताम्।
चित्तमिदं निःशेषित-
विषयविषासङ्गवासनावधि मे॥५॥

यऽम्य् म्यऽऽन्य् मनन विषियि ज़हरुक शोक
वासना सऽऽत्य ह्येत मूलऽःमुञ्ज़ि गोल
चानि चरणऽः अमृतऽः भक्ती सरऽक़िस
स्वादस लायक बनितन अनमोल॥५॥

त्वद्भक्तितपनदीधिति-
संस्पर्शवशान्ममैष दूरतरम्।
चेतोमणिर्विमुञ्चतु
रागादिक-तप्तवह्निकणान्॥६॥

सिर्यि कान्त रत्न रूप म्योन इः हृदयः
चानि लोलऽः सिर्यिचि ज़ऽच़ऽः लगिथई

राग द्वेष आद्यक दज़ऽः वुन ब्वड नार
वासना संस्कार, छ्नितन त्रऽऽविथई॥६॥

तस्मिन्पदे भवन्तं
सततमुपश्लोकयेयमत्युच्चैः।
हरिहर्यश्वविरिञ्चा
अपि यत्र बहिः प्रतीक्षन्ते।॥७॥

ब्रह्मा विष्णू इन्द्राद्यक ति यति
अऽऽन्तऽः गऽऽमऽत्य्, छि न्यब्रऽः कनिथई
शम्भू चानि तऽथ्य्, अलौक्यक जायि मंज
रोज़ऽहऽऽ सर्वदा, गीत चऽऽन्य् ग्यवऽःनई॥७॥

भक्तिमदजनितविभ्रम-
वशेन पश्येयमविकलं करणैः।
शिवमयमखिलं लोकं
क्रियाश्च पूजामयी सकलाः॥८॥

चानि भक्ती हुन्द मस, त्युथ मद म्येः खऽऽर्य्तन
यमि सऽऽत्य् अंग अंग, म्यऽऽन्य फ्वलिथई
वछऽहऽऽन जगत सोरुई, शिवऽःरूपई
कामि सार्यय, शिवऽः पूज़ा बनिथई॥८॥

मामकमनोगृहीत-
त्वद्भक्तिकुलाङ्गनाणिमादिसुतान्।
सूत्वा सुबद्धमूला
ममेति बुद्धिं दृढीकुरुताम्॥९॥

मनऽः किन म्येः रटऽमऽच्च प्राणीश्वर्यः
चऽऽन्य भक्ती रूप रऽच्य् क्वलऽकूर
अष्टऽः स्यद्ध शूर्य् ज़्यथ, स्वः सऽन्य् मूल दियितन
म्यऽऽन्य ब्वद्ध करितन शुऽद्ध भरपूर॥९॥

सतगुरु वन्दना

जय जय जय म्यानि ईश्वर स्वरूप
इथय पऽऽठ्य् हावतम म्येः वारऽः पऽऽठ्य रूप
दास छुस ब चोनुई कास्तम ग्रोण
इन्द्रययि च़रौ गोल पान म्योन
क्याः करऽः किथऽः पऽऽठ्य् थुद वुथऽः बऽः
वासनायि डास किथऽः कऽन्य् करऽः बऽः
काया त माया छि पतऽः लज्यमऽच्य् म्येः
बुद्धी म्यऽऽन्य ति तल गऽऽमऽच्य् म्येः
चानी दयायि हऽञ्ज़ छयम आशा
म्यान्यन शत्रन करतऽः नाशा
पूर्ण गव अज सतिम स्तूतर
चानी दयायि प्वर म्येः ईः स्तूतर
उत्पल दीवस बऽः लगऽहऽऽ पऽऽर्य
क्षीमराजन थौमुत छु सऽऽर्य सऽऽर्य
तुऽहि ति क्वरवऽः बडऽः ब्वढ कारा
हिन्दी पऽऽठ्य दितुवस तारा
सारिनई छुस करान डण्डःवत प्रणाम
दास छुस तुहुन्दई "दीन" छुम नाम
करितोम दया जल हऽऽवतोम स्वरूप
जय जय जय जय श्री ईश्वरस्वरूप॥

अलौकिकोद्बलनाख्यमष्टमं स्तोत्रम्

आठवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव
श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मन जू भगवान की जय जय जय

यः प्रसादलव ईश्वरस्थितो
या च भक्तिरिव मामुपेयुषी।
तौ परस्परसमन्वितौ कदा
तादृशे वपुषि रूढिमेष्यतः॥१॥

भगऽवानऽः सुन्द युस अनुगृहऽः प्यून्ता
भक्ति भावऽः रछ़ रूपऽः म्येः निश इवन
द्वनऽःवय पानऽःवऽन्य् मीलिथ अलौक्यक
स्वरूपस मंज़ कर सना व्वलऽःसन॥१॥

तथा

अनुगृह प्यून्ता युस ईश्वरस मंज़
लोलऽः रछ़ अक बनिथ आव म्येः मंज़
द्वनऽः वऽन्य् पानऽः वऽन्य कुन कर गछ़ि खय
त्युथुई ह्यू स्वरूप कर म्येः तिः फ्वलिमय॥१॥

थोड़े से भाव पुष्प

प्रसाद का एक कण मेरे ईश्वर से
मेरे पास आया भक्ति स्वरूप से
गले मिल के दोनों पूरे प्रेम से
ठहरेंगे स्वामी कब अपने स्वरूप से॥१॥

प्रसाद का वहां है अनन्त ही खज़ाना
मेरे वास्ते था बस एक ही दाना
ठहरा है वह ही मुझमें बन के भक्ति
शाकिर इसी में हूं, है यह मेरी शक्ति॥२॥

न समझो कि कन्जूस था मेरा मालिक
कसर थी मुझी में न था लायक सालिक
बान्टना था जगत को वह सब खज़ाना
इस तरह मुझ को दिया बोहत दाना॥३॥

इस भक्ति को तोला मैंने देखा
प्रसाद तो मुझ को मिला है बोहत सा
जितना है उतना ही मुझ को बहुत है
मेरा पात्र भी तो तंग ही बहुत है॥४॥

इन दोनों में अब चाहता हूं शादी
नतीजा हो जिस का मेरी आबादी
जबभी यह दोनों प्रेम से मिलेंगें
चिदानन्द रूप फल मुझ को तो देंगे॥५॥

करते रहें यह हमेशा समागम
तभी मेरा आनन्द कभी भी न हो कम
अजब है प्रसाद यह अजब है यह भक्ति
सन्तान होगी अजब मेरी शक्ति॥६॥

इन का समागम सुख होगा मेरा
बिछुड़ना इनही का मुझे दुख का घेरा
इसी शक्तिबल से उद्धार होगा मेरा
प्रसाद और भक्ति का सन्तान प्यारा॥७॥

रहूं शाकिर मैं हर इक हाल में
न कांक्षा कोई हो किसी भी काल में
"दीन" हूं मैं नाथ मेरा सद्गुरु देव
जय बोलूं हरदम जयजय गुरु देव॥८॥

त्वत्प्रभुत्वपरिचर्वणजन्मा
कोऽप्युदेतु परितोषरसोऽन्तः।
सर्वकालमिह मे परमस्तु
ज्ञानयोगमहिमादि विदूरे॥२॥

ज्ञानऽः तऽः यूगऽचिः स्यद्धी वरऽऽयी
हृदयस मंज़ फ्वलितन म्येः सुः आनन्द
युस चानि हऽऽकिमी हन्दि स्वादऽः मंज़ऽः
सर्वदा नेरान छु म्वदुर कन्द॥२॥

तथा

ज्ञान तय यूग थवतन दूरऽई
हृदय म्योन रूज़तन फ्वलऽःवुन सदा
चानि हऽऽकिमी हन्दि स्वादऽः नेरवनिः
अलौक्यक आनन्दऽः रसऽः सर्वदा॥२॥

लोकवद्भवतु मे विषयेषु
स्फीत एव भगवन्परितर्षः।

केवलं तवं शरीरतयैतान्
लोकयेयमहमस्तविकल्पः॥३॥

लूकऽनई इन्द्य् पऽऽठ्य् अऽऽसतन म्येः,
भगवन व्यषियन हऽन्ज़ तीच़ तृषणा
कीवल विकल्पौ ख्वस बऽः रूज़ित
तिम तिः वुछऽहऽऽख चोनइ स्वरूपा॥३॥

देहभूमिषु तथा मनसि त्वं
प्राणवर्त्मनि च भेदमुपेते।
संविदः पथिषु तेषु च तेन
स्वात्मना मम भव स्फुटरूपः॥४॥

दीहऽः च्यन भूमियन मनऽः क्यन व्यकलपन
भींदऽः द्रामत्यन ब्ययि सुऽखऽः दुऽख रूपन
ज्ञानऽः क्यन मार्गन मंज़ तमाम चीज़न
ही स्वात्मा दिम, अख पनुन दर्शन॥४॥

निजनिजेषु पदेषु पतन्त्विमाः
करणवृत्तय उल्लसिता मम।
क्षणमपीश मनागपि मैव भूत्
त्वदविभेदरसक्षतिसाहसम्॥५॥

आनन्द रसऽः फ्वजिमच़ऽः म्यानि इन्द्रययि वृच़
पनऽःनी व्यकल्प त व्यषय गऽऽरितन
अकि ख्यनऽः अक रछ मगर जुरत म्येः
अद्वयिः रसऽः चानिः भ्यन्न, मऽसऽः अऽऽस्य्तन॥५॥

लघुमसृणसिताच्छशीतलं
भवदावेशवशेन भावयन्।
वपुरखिलपदार्थपद्धते-
र्व्यवहारानतिवर्तयेय तान्॥६॥

ल्वत कोमल चिटऽः न्यर्मल शीतल
आनन्दमय स्वरूप चोन स्वरऽःवुन
स्वरूपऽः आवीशऽः ज़ोरऽः बऽः रोज़ऽहऽऽ
इः भीदमय व्यवऽहार पूरऽः त्रावऽवुन॥६॥

टीका

माया गरूर नऽ आसनऽः किन छुख ल्वत च़ऽः।
सुखदायक स्पर्श चोन, छुक कोमल॥१॥

प्रकाशऽः स्वरूप आसऽवुन छुक चिटऽः सफेद।
ज़गत प्रतिबिम्ब दऽऽरी अऽऽनऽः निर्मल॥२॥

सम्सारुक सन्ताप गालऽः वुन च़ऽः शीतल।
स्वरूपऽः समावीशऽः प्रसाद दितऽः म्येः जलजल॥३॥

सु प्रसादऽः आवट बनाविः म्येः न्यर्मल।
भीदऽःमय ख्वट व्यवऽहार त्रावऽः जलजल॥४॥

विकसतु स्ववपुर्भवदात्मकं
समुपयान्तु जगन्ति ममाङ्गताम्।
व्रजतु सर्वमिदं द्वयवल्गितं
स्मृतिपथोपगमेऽप्यनुपाख्यताम्॥७॥

म्योन आत्मा चानी ब्वथि फ्वलितन
सऽऽरी लूक म्यऽऽन्य् अंग अंग बनितन
सोरुई द्वयतऽः भावुक फ्वलुन इः
याद प्यथ तिः पूरऽः पऽऽठ्य् मशितन
यऽऽनी यथ मायिक ज़गऽतस सऽऽत्य
म्येः मतऽः केन्ह लगाव रूज़तन॥७॥

समुदियादपि तादृशतावका-
ननविलोकपरामृतसम्प्लवः।
मम घटेत यथा भवदद्वया-
प्रथनघोरदरीपरिपूरणम्॥८॥

खसि ना लहऽराह चानि मुऽखऽः कमलऽकिस
दर्शनऽः रूपी परमऽः अमृतस
य्वसऽः भरिहे पूरऽः पऽऽठिन म्यऽऽनिस
खोफनाक द्वयतऽःअन्यर खन्दऽकस॥८॥

तथा

अद्वयिः स्वरूप चोन आसुन खटित म्येः
भगवानऽ: बडऽःब्वड घाव गोमुत म्येः
चानि म्वखऽ: दर्शनचि परमामृतऽ क्वलिः
यूपाः खसनऽ: सऽऽत्य् इयितन भरनऽ: म्येः॥८॥

अपि कदाचन तावकसङ्गमा-
मृतकणाच्छुरणेन तनीयसा।
सकललोकसुखेषु पराङ्मुखो
न भवितास्म्युभयच्युत एव किम्॥९॥

कुनि कुनि अकि रचिः चानिः समागमऽ:
अमृतऽ: फ्यरिः छिकिः अदऽःरयोमुत
सम्सऽऽर्य स्वखौऽ: निशि प्वत बऽ: फ्योरमुत
इनऽ: गछः द्वनऽवऽई निशिः, नलऽ: गोमुत॥९॥

तथा

अक रऽछ समागम चोन परमऽ: अमृत
ज़ान्ह कालि तमिची वर्शायि सऽऽत्यन
सम्सारऽ: सुऽखव निष प्वत चामुत बऽ:
द्वनऽःवई निषिः मा रोज़ऽ: खऽऽली नाथ॥९॥

टीका

शक्तिपात यलि छुई क्वरमुत च़्येः।
सुई अमृतऽ: फ्युर अक प्योमुत म्येः।
तती जगऽतुक भूग त्योगमुत म्येः।
दर्शनऽ: भ्यन्न जोरय रोवमुत म्येः॥९॥

सततमेव भवच्चरणाम्बुजा-
करचरस्य हि हंसवरस्य मे।
उपरि मूलतलादपि चान्तरा-
दुपनमत्वज भक्तिमृणालिका॥१०॥

चऽऽन्य चरणऽ: कमल, पराशक्ती रूपऽ: सर
राज़ऽ: हंसा ह्यू रूज़ित बऽ: तत मंज़
ज़न्मऽ: रऽस्यति, चऽऽन्य् भक्ती, पम्पोशऽ: नल
जल म्येः बनितन, ह्यत अन्द मूल तऽ: मंज॥१०॥

तथा

ही जनमऽ: रऽस्यति दयि प्रथवक्तन म्येः
राज़ऽ: हंसस चानि चरणऽ: कमलऽ: सरऽ: मंज़ऽ:
नेरवनि भक्ती पम्पोशऽ: नलऽःकुई
त्यहरिः मूलऽ: मधिः कुई मीलतन पूरऽ: मज़ऽ:॥१०॥

टीका

तिहुर स्वरूपऽ: प्रवेशुक समय गव
मंज़ स्वरूपऽ: साक्षात्कारुक मध्यः काल
अदऽ: मूल स्वरूपऽ: विश्रान्त पूरऽ: पऽऽठ्य्
भगवान हर वक्तऽ: रूज़तन म्ये बहाल॥१०॥

उपयान्तु विभो समस्तवस्तून्यपि
चिन्ताविषयं दृशः पदं च।
मम दर्शनचिन्तनप्रकाशा-
मृतसाराणि परं परिस्फुरन्तु॥११॥

ही व्यापक प्रभू ज़गऽतऽक्य इम तिम चीज़
इन्दरियन म्यान्यन वासना व्यकल्प बनितन
मगर सोचनऽ: वर्तनऽ: सातन
तिम प्रकाश व्यमर्श तिः अमृत फ्वलितन॥११॥

तथा

व्यापक भगऽवानऽ: जान नाकारऽ: चीज़
सऽऽरी म्यानि नज़रिः तल अऽऽस्य्तन
मगर व्यच़ारऽ: वरतावऽ: सातन
तिम चोन स्वरूप प्रकाश, अमृत बनितन॥११॥

टीका

ही विश्वमय प्रभू इम जगतऽक्य व्यषय
म्यऽऽन्य कान्क्षा त व्यच़ार बनितन
मगर वर्तावनऽ: विज़ि तिम सऽऽरी
म्येः सिरिफ चोन स्वरूपई बऽऽस्य्तन॥११॥

परमेश्वर तेषु तेषु कृच्छ्रे-
ष्वपि नामोपनमत्स्वहं भवेयम्।
न परं गतभीस्त्वदङ्गसङ्गा-
दुपजाताधिकसम्मदोऽपि यावत्॥१२॥

ही परमीश्वरऽः बडऽः बडि दुऽखऽः विज़िः
ग्वछुस नऽः बऽः भयिः रुसतुई योत आसुन
तमी वक्तऽः चानि शरीरऽः स्पर्शऽः सऽऽत्य्
हर्षन हऽन्द्य् खज़ानऽः ग्वछ़स बऽः प्रावुन॥१२॥

तथा

कषट जन किथ ही दयि इन म्ये ज़ान्ह
भयि रुसतुई योत इनऽः बऽः त्यलि आसय
च़्यत रूप शरीरस चानिस त्यली लगित
तथ मंज़ तिः पूरऽः आनन्द हर्ष आसय॥१२॥

द्वखस या स्वखस, मंज ह्युव ग्वछुस रोजुन
चोनुई शुकरानऽः प्रथ विजि करऽःवुन
हर वक्तः समऽऽज या व्यथानऽः विजिः
ह्यस रूप चैतन्यता बऽः भूगऽःवुन॥१२॥

भवदात्मनि विश्वमुम्भितं यद्
भवतैवापि बहिः प्रकाश्यते तत्।
इति यद्दृढनिश्चयोपजुष्टं
तदिदानीं स्फुटमेव भासताम्॥१३॥

समावीषऽः वक्तन पूरऽः पऽऽठ्य् ज़ोनमुत
इः ज़गत सोरुई च्यई मंज़ छु वुर्मुत
न्यब्रऽः ति चोनुई प्रकाश चमक्योमुत
वऽन्क्यन ति प्रत्यक्ष, ग्वछ़ बोजनऽः आमुत॥१३॥

तथा

स्वरूपस चऽऽनिस वरित ज़गत इः
द्रामुत तऽती, प्रज़लान तमी किन इः
वारऽः पऽऽठ्य् न्यश्चय त अनुभव क्वरुम इः
प्रकट अऽऽस्यतनम वारऽः, हर वक्तऽः भाव इः

उपसंहार

भगवान ईश्वर स्वरूपनि दयायि सऽऽत्य्
अन्द वोत अऽऽठिम स्तूत्र ग्वरऽः कृपायि सऽऽत्य्
रोज़तन इः अनुभव सर्वदा म्येः सऽऽत्य् सऽऽत्य्
आत्मऽः दीव शिव छु सऽऽरिसई मंज सऽऽत्य् सऽऽत्य॥

स्वातन्त्र्यविजयाख्यं नवमं स्तोत्रम्

नवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव
श्रीमान श्री ईश्वरस्वरूप गुरुदेव
श्री लक्ष्मण जू महाराज की जय जय जय

कर सना दिक म्येः दर्शुन नाथ
करसना करऽः बऽः पान अर्पन
करसना ज़गतस मंज़ वछत च़ऽई योत
कर आसऽः पूरऽः पऽऽठ्य् चोन बऽः दास
कर दिक च़ऽः दृष्टी म्ये अद्वयतऽः प्रकाश
कर हावक म्येः रूप पनऽःनुई
कर ईश्वर स्वरूप जी च़ऽः न्वन नेरक
कर दीनस च़लिः मूहऽः जञ्जाल
नमस्कार कऽर्य् कऽर्य् दीन छुई वनऽनई
कर नविम स्तूत्र परऽः बऽः कमाल

कदा नवरसार्द्रार्द्र-
सम्भोगास्वदनोत्सुकम्।
प्रवर्तेत विहायान्यन्
ममत्वत्स्पर्शने मनः॥१॥

कर सना ब्ययि केन्ह सोरुई त्रऽऽवित
द्वहऽ द्वहऽः नवि नविः भक्ति रसऽः कोमल

चानि सम्भूगऽः स्वादुक इः चिकऽः चाव
मन म्योन च़ऽई सऽऽत्य् तन लागि ही नाथ॥१॥

त्वदेकरक्तस्त्वत्पाद-
पूजामात्रमहाधनः।
कदा साक्षात्करिष्यामि
भवन्तमयमुत्सुकः॥२॥

अकि चानि रागऽः छुस रङ्गनऽः बऽः आमुत
बऽड्य् छ्यम दौलत पादि कमलऽः पूज़।
च़ऽई लभनऽः खऽऽतऽरऽः क्रेशान छुस बऽः
कर करऽः साक्षात दर्शुन नाथ॥२॥

गाढानुरागवशतो
निरपेक्षीभूतमानसोऽस्मि कदा।
पटपटिति विघटिताखिल-
महार्गलस्त्वामुपैष्यामि॥३॥

अनुराग चोन ग्वछ त्यूताः म्येः आसुन
युथ कांक्षायि रव़स बनि इः मन म्योन
बडऽः बऽड्य् इम तोर फट फट फ्वटऽरित
कर सना च़्यऽई ब्रोन्ह कुन वातऽः नाथ॥३॥

स्वसंवित्सारहृदया-
धिष्ठानाः सर्वदेवताः।
कदा नाथ वशीकुर्यां
भवद्भक्तिप्रभावतः॥४॥

प्रकाश-व्यमर्शऽः रूप स्वात्मऽः सम्वित सार
च़्यत प्रकाश हृदयिः रोज़ऽः वनि सार्यै
इन्द्रेयिः दीवियिः कर सना करख बऽः वश
चानि भक्ती प्रभावऽः, पूरऽः पऽऽठ्य् ही नाथ॥४॥

कदा मे स्याद्विभो भूरि
भक्त्यानन्दरसोत्सवः।
यदालोकसुखानन्दी
पृथङ्नामापि लप्स्यते॥५॥

करसना पूरऽः पऽऽठ्य बनिः भगवानऽः म्येः
भक्ति आनन्द रसुक त्युथ ब्वड बजिराः
आस्यम भ्युन्न भ्युन्न नावऽःदार भावःवर्ग
च़्यथप्रकाशऽः आनन्दऽः रसऽः भ्वर ही नाथ॥५॥

ईश्वरमभयमुदारं
पूर्णमकारणमपह्नुतात्मानम्।
सहसाभिज्ञाय कदा
स्वामिजनं लज्जयिष्यामि॥६॥

ऐश्वीर्यः स्वस, भयिः रव़स सर्वदा दयि
उधार चित पूर्ण छुक अकारण
पान छुई ख्वटऽमुत कर बऽः मन्दऽछावत
हव्गऽःमव्गऽः न्वन लभित, ही स्वामी नाथ॥६॥

कदा कामपि तां नाथ
तव वल्लभतामियाम्।
यया मां प्रति न क्वापि
युक्तं ते स्यात्पलायितुम्॥७॥

करसना अलौक्यक प्रेम पात्र बनिथ्
कृपा पात्र चोन बनऽः ही भगवन
युथ नऽ रोज़ी वार ,च्येः ज़ाव्ह म्येः निशिः
अक रछ दूरुण चूरि रोजुन नाथ॥७॥

तत्त्वतोऽशेषजन्तूनां
भवत्पूजामयात्मनाम्।
दृष्ट्यानुमोदितरसा-
प्लावितः स्यां कदा विभो॥८॥

पदार्थ

ही विभू करसना सऽऽरी इम लूक
ज़ानक छी च़्यई असली पूज़ान
ज्ञानुक स्वरूपई योत, तिम मऽऽनित
आनन्दऽः रसऽः बऽः, इमऽः भरनऽः नाथ॥८॥

भावार्थ

पनऽः नुई पान क्याज़ि सारिनई टोठ
यऽम्य् ती ज़ोन सुइ त्वर, भवऽः सरऽः ब्रोञ्ठ
सुई ज़ान ज्ञान छऽई स्यद्ध पूज़ा
शाह छुक शाहस करु पूज़ा॥१॥

च़ई छुक पानय सारिनई हुन्द ज़ुव
सारिनई टोठ छु सुई पनुन ज़ुव
असली स्वात्म दीव शिव पनुन ज़ुव
सोरुई कऽऽम कार, पूज़ुन सुई ज़ुव॥२॥

टीका

जगतस मंज़ युस कान्ह केन्ह ति करान
छु असली स्वात्म दीवस शिवस पूज़ान॥
माया मलऽः किन असि अछिन ओन प्यौ
तवय नऽः इः असल कथ फिकिरिः तरान॥
दुनियादऽऽरी यथ अऽस्य वनान ठगिल
स्व ठगिल ति स्वात्मा पूज़नऽः इवान॥
ठगिल या सऽऽदिल द्वनऽःवय करऽवुन दय
"म्यई क्वर" वनुन ज़ीवस ज़न्म बनान॥
स्यठाह वुनत दीनऽः कर वुन्य् छ्वपऽः
कथौ मंज़ऽः ना केन्ह सूद नेरान॥
दयि कृपा गछि आसुन अन्द्री नार
न्यब्रऽः छ्वपऽः करित लीला रोज़ वछान॥

तथा

सोरई इः, तिः, छि दयि पूज़ा
स्वात्म दीव करान पानस पूजा
यस इः भाव ज़ऽऽन्य मंज़ आव
सुई सत्वर ईश्वर स्वरूप छू नाथ॥८॥

ज्ञानस्य परमा भूमि-
र्योगस्य परमा दशा।
त्वद्भक्तिर्या विभो कर्हि
पूर्णा मे स्यात्तदर्थिता॥९॥

ज्ञानऽच्य् थऽज़ अवस्था ति सुई विभू
युगऽच्य् पराकाष्ठा ति सुई प्रभू
प्रारथना छुस करान गऽछ म्येः सुई भक्ती
कर गछि पूरऽः इः, म्यऽऽन्य् प्रार्थना नाथ॥९॥

सहसैवासाद्य कदा
गाढमवष्टभ्य हर्षविवशोऽहम्।
त्वच्चरणवरनिधानं
सर्वस्य प्रकटयिष्यामि॥१०॥

पराशक्ति रूपऽः चरणऽः खज़ानऽः चोन
अनुगृहऽः कर सना लभऽः हङ्गऽःमङ्गऽः चोन
वारऽः पऽऽठय् सु रटित मस्त तऽ ख्वश गछित
कर सना सारिनई (भक्तन) हावऽः नाथ॥१०॥

परितः प्रसरच्छुद्ध-
त्वदालोकमयः कदा।
स्यां यथेश न किञ्चिन्मे
मायाच्छायाबिलं भवेत्॥११॥

च़वापऽऽर्य् व्यापत ब्ययि अनन्त निर्मल
चानि च़्यथप्रकाशि वोल, कर आसऽः नाथ
युथ ज़न म्योन केन्ह मल्युन ज़ाञ्ह गछि नऽः
भीदऽः भावऽः अन्धकारऽः सऽऽतिन ही नाथ॥११॥

आत्मसात्कृतनिःशेष-
मण्डलो निर्व्यपेक्षकः।
कदा भवेयं भगवं-
स्त्वद्भक्तगणनायकः॥१२॥

सदाशिवः प्यठऽः पृथवी ताम सऽऽरी भवन,
च़्यथ स्वरूपस सऽऽत्य अभिन्न बनऽऽवित

तमि सऽऽत्य् काञ्क्षायि र्‌वस बनिथ चान्यन
भऽक्तयन सरदार कर बनऽः बऽः नाथ॥१२॥

टीका

सदाशिवऽः प्यठऽः पृथ्वी ताम इम भवन
सोरुई जगत छू तऽथ्य् मंज़ आसन
च़्यथ स्वरूपस सऽऽत्य अभिन्न बनावुन
पनऽनुई आत्मा सोरुई गव ज़ानुन॥१॥

यलिः सोरुई पनऽनुई पान[1] आसिः
अक तऽ व्याख सोरुई पानई[2] आसिः
नऽः काञ्क्षा तऽः नऽः ज़रूरत आसिः
तऽथ हिश छयनऽः ब्यियि कांह इन्सऽऽनियत॥२॥

इन्सऽऽनियत सुई गयि पऽऽज़्य पऽऽठ्य् यथ
ब्यियि सुन्द दोद पनऽः निस जिगरस ह्यथ
यस ती आसि सु कस छु नऽः सरदार
सारिनई लूकन सुई छू सरदार॥३॥

सुऽदशा कर आसि भगवन दीनस
युस ईश्वर स्वरूपुन दासन दास नाथ॥१२॥

नाथ लोकाभिमानाना-
मपूर्वं त्वं निबन्धनम्।
महाभिमानः कर्हि स्यां
त्वद्भक्तिरसपूरितः॥१३॥

ही अलौक्यक प्रभू ही ज़गत स्वऽऽमी
ल्वतिः लूकऽः अभिमानुक तिः, च़ऽई कारण
चानि भक्ती रसऽः पूर्ण बऽः भरित
थदि अहं अभिमानऽः[3] वोल कर आसऽः नाथ[4]॥१३॥

टीका

युस युस अभिमान ज़गऽतस मंज़ छू
सु तिः सोरुई करुण चोनुई योत छू
शिव रूप छुस बऽः थुद अभिमान छू
(प.अ. (शिवोहं अनुभव थुद अभिमान छू))
चानि भक्ती फलऽः, कर आसऽःती नाथ॥१३॥

अशेषविषयाशून्य-
श्रीसमाश्लेषसुस्थितः।
शयीयमिव शीताङ्घ्रि-
कुशेशययुगे कदा॥१४॥

रूप वगैरऽः सारिवई व्यषियौ पूर्ण
भक्ति लक्ष्मी हऽिन्द नालऽःमति बऽः सुखी
कर विश्राम करऽः चरणऽः कमल जोरि मंज
सन्ताप गालऽः वऽन्य, इम छि शीतल, नाथ॥१४॥

भक्त्यासवसमृद्धाया-
स्त्वत्पूजाभोगसम्पदः।
कदा पारं गमिष्यामि
भविष्यामि कदा कृती॥१५॥

चानि भक्ती रूपऽच्य् मदिरा च्यथ
चऽऽन्य बऽढय् पूज़ा बडऽरऽऽवित क्यथ
तमि सम्पदायिः, तार प्रऽऽवित न्यथ
कर बऽः आसऽः कृतकृत्य, स्यद्ध मनोरथ नाथ॥१५॥

आनन्दबाष्पपूर-
स्खलितपरिभ्रान्तगद्गदाक्रन्दः।
हासोल्लासितवदन-
स्त्वत्स्पर्शरसं कदाप्स्यामि॥१६॥

आनन्दऽः अशि सऽऽत्य् ओन तऽः द्वगाशुन
गद गद वानी ग्वन चऽऽन्य गेवऽःदुन
अऽस्य् अऽस्य् फ्वलऽःवनि ब्वथि बऽः फ्वलऽवुन
चानि स्पर्शऽः अमृतऽः, सऽऽत्य कर आसऽः नाथ॥१६॥

प.अ १. आत्मा २. आत्मई ३. प.अ. परामर्शऽः
४. पूर्ण शिवऽः परामर्शऽः वोल, कर आसऽः नाथ

पशुजनसमानवृत्ता-
मवधूय दशामिमां कदा शम्भो।
आस्वादयेय तावक-
भक्तोचितमात्मनो रूपम्॥१७॥

दाण्दऽबाठ लूकन हऽिन्द ब्यचारऽच्य्
दशा ही शम्भू धनिरित बऽः त्रऽऽवित
चान्यन भऽक्तयन लायक पनऽःनिः
स्वात्मऽः स्वरूपुक स्वाद कर तुलऽः नाथ॥१७॥

लब्धाणिमादिसिद्धि-
र्विगलितसकलोपतापसन्त्रासः।
त्वद्भक्तिरसायनपान-
क्रीडानिष्ठः कदासीय॥१८॥

अणिमाद्यक इमऽः अष्टऽःस्यज़ प्रऽऽवित
दुऽखन सन्तापन हञ्च्य् भयिः गऽऽलित
खेलाः चनऽःची भक्ती रूपऽः अमृत
खेलऽनस मंज़ करसना, गछऽः लीन बऽः नाथ॥१८॥

नाथ कदा स तथाविध
आक्रन्दो मे समुच्चरेद् वाचि।
यत्समनन्तरमेव
स्फुरति पुरस्तावकी मूर्तिः॥१९॥

कुनुई अक नादा कर सना म्यानिः मुऽखऽः
नेरिः अलौक्यक आरऽःक्रुऽञ्द ही ईशऽः
यमि सऽऽत्य यकदम पऽऽन्य पानय चोन
परमानन्दऽः रूप ब्रोंठऽः कनि फ्वलिः नाथ॥१९॥

गाढगाढभवदङ्घ्रिसरोजा-
लिङ्गनव्यसनतत्परचेताः।
वस्त्ववस्त्विदमयत्नत एव
त्वां कदा समवलोकयितास्मि॥२०॥

वारऽः पऽऽठ्य् ज़ोरऽः सान चानि चरणऽः कमलऽकि
नालऽमतिः लोलऽः, फटिमतिः हृदयि बोल
करसना भावऽः अभावऽःमय इः सम्सार
हङ्गऽः मङ्गऽः चोनुई, स्वरूपाः, वछि नाथ॥२०॥

उपसंहार

सम्सार तऽ व्यवऽहार क्याज़ि क्रूठ भासान
मल त्र्येः क्याज़ि छिम ठ्वर ब्वथि थावान
करसना चऽऽन्य तिछ़, दया म्येः आसि
सम्सार तिः मल तिः च़ऽई भासिः ही नाथ॥१॥

ही ईश्वरस्वरूप दिम त्युथ बल म्येः
साफ जल गछऽहऽऽ त्रावऽहऽऽन मल म्येः
श्री उत्पलदीव क्षीमराज तुह्य् म्येः
थ्वद तलित कर दियूम दीनस कल म्येः॥२॥

छयम खबर पूरऽः पऽऽठ्य् तूह्य् दया म्येः करिव
वानी पनऽन्य तुह्य् ज़ाञ्ह अपज्ज़ न करिव
चेरऽः सऽऽत्य छुस,मरान वुऽन्य् जलदी करिव
कर करिव कर करिव म्येः दया कर करिव॥३॥

अविच्छेदभङ्गाख्यं दशमं स्तोत्रम्

दसवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

न सोढव्यमवश्यं ते जगदेकप्रभोरिदम्।
माहेश्वराश्च लोकानामितरेषां समाश्च यत्॥१॥

ही भगवन ज़गऽःतऽकिः कीवल स्वऽऽमी
बरदाश्त पज़ी नऽः, हरगिज़ च़्येः करुन
अऽऽसित अऽस्य् च़्येः, महीश्वरऽः सऽञ्च्य् दास
लूकऽः पऽऽठ्य् आसव, ज्ञानऽः हीन ही नाथ॥१॥

ये सदैवानुरागेण भवत्पादानुगामिनः।
यत्र तत्र गता भोगांस्ते कांश्चिदुपभुञ्जते॥२॥

इम लूक लोलऽसान, चान्यन (प्रकाश-व्यमर्श) पादन
सर्वदा गछ़ान, शरणागत नाथ
प्रथ अवस्थायि मंज़, तिम अलौक्यक
परमानन्दऽः भूग, छावान नाथ॥२॥

भर्ता कालान्तको यत्र भवांस्तत्र कुतो रुजः।
तत्र चेतरभोगाशा का लक्ष्मीर्यत्र तावकी॥३॥

महाकालस नाश, करऽः वुन च़ऽः यति
वति कथि छुख, तति, दुऽख या दोद कति
यति चऽऽन्य भक्ती, रूपऽः लक्ष्मी ततिः
ब्यथि भूगन हऽञ्ज़, काञ्क्षा कति नाथ॥३॥

क्षणमात्रसुखेनापि विभुर्येनासि लभ्यसे।
तदैव सर्वः कालोऽस्य त्वदानन्देन पूर्यते॥४॥

यऽम्य् स्वखऽःसान, अकि क्ष्यनऽः तिः
व्यापक प्रभू च़ऽः, वारऽः ल्वभऽःनक
तमी वक्तऽः प्यठऽः तस, प्रथ काञ्ह समऽया
च़्यथ रूपऽः आनन्दऽः रसऽः, ब्वर नाथ॥४॥

आनन्दरसबिन्दुस्ते चन्द्रमा गलितो भुवि।
सूर्यस्तथा ते प्रसृतः संहारी तेजसः कणः॥५॥

बलिं यामस्तृतीयाय नेत्रायास्मै तव प्रभो।
अलौकिकस्य कस्यापि माहात्म्यस्यैकलक्ष्मणे॥६॥

शब्दार्थ

च़न्द्रमऽः चानि आनन्दऽः रसुक अक बिन्दू
इः ज़गत रूप, फ्वलऽःमुत ही विभू
सिर्यिः चानिः बडिः तीज़ऽच अक ज़ऽच़्य्
भीदस गालऽःवुन शोलान ही प्रभू
सिर्यस तऽः चन्द्रस ज़्ववब युस कुस्ताम्
महिमा अलौक्यक जोरऽः रुस युसना
परप्रमातृ त्र्ययिमिस तथ नेत्रस बऽः
आनन्दऽः स्वरूपस पान वन्दऽःहऽऽ नाथः॥५॥६॥

भावार्थ

ही प्रभू म्यानि भगवानऽः ईश्वर-स्वरूप
परप्रमातृ रूप चोन युस छू ह्यसऽः रूप
प्रमेय रूप ज़गऽतस, चन्दरमस प्रकटावान
प्रमान रूप सिर्यिः न्वन सुई छु कडान
द्वनऽःवय ज़ोतान तमिःकी प्रभावऽः सऽऽत्य
त्र्ययुम नेथर युस, अग्नऽः रूप, अन्द्रय सऽऽत्य्
सुई छु शिवरूप-अहं-स्वात्म स्वरूप
तऽस्य् बऽः वन्दऽःहऽऽ पनुन सोरुई स्वरूप॥५,६॥

तेनैव दृष्टोऽसि भवद्दर्शनाद्योऽतिहृष्यति।
कथञ्चिद्यस्य वा हर्षः कोऽपि तेन त्वमीक्षितः॥७॥

युस काञ्ह भऽक्तया चोन दर्शुन करिथ
गव बेहद ख्वश तमी वुछनक च़ऽः
या किथऽ ताम पऽऽठ्य् यमिसई अलौक्यक
आनन्द गव प्राप्त, तमी ल्वबऽनक च़ऽः॥७॥

येषां प्रसन्नोऽसि विभो यैर्लब्धं हृदयं तव।
आकृष्य त्वत्पुरात्तैस्तु बाह्यमाभ्यन्तरीकृतम्॥८॥

ही व्यापक प्रभू गोख च़ऽः प्रसन्न इमन
तिमऽऽवई ल्वभ सार चोन, प्रकाश त व्यमर्श
करित प्रकट न्यब्रयुम ज़गत च़्यथ रूपस मंज़
(वछित इः जगत च़ऽई योत स्वात्मा, ह्यसऽ रूप)
करुख सुई लय अन्द्री च़्यई मंज़ ही नाथ॥८॥

त्वदृते निखिलं विश्वं समदृग्यातमीक्ष्यताम्।
ईश्वरः पुनरेतस्य त्वमेको विषमेक्षणः॥९॥

सोरुई ज़गथा च़्येः भ्यन्न ही प्रभू
द्वग्यन्यारऽः किन ज़ऽः अछ्य वोल वछनऽः आव
अद्वयत स्वामी अख छुक च़ऽः भगवन
अभीद दृष्टीवोल त्रिनेत्र छुक च़ऽः नाथ॥९॥

टीका

श्लूकस मंज शब्द छु समऽदृक
यमि मंज़ऽः मतलब तोलनुक द्राव
तोलुन गव त्यलिः यलि भीद आसिः
अऽथ्य द्वगिन्यारस ज़ऽः अछ्य् मतलब द्राव॥

आस्तां भवत्प्रभावेण विना सत्तैव नास्ति यत्।
त्वद्दूषणकथा येषां त्वदृते नोपपद्यते॥१०॥

चानि प्रभावऽः भ्यन्न तिमन ति नऽः सत्ता
नास्त्यक लूक, करान इम चऽऽन्य न्यन्दा
सु निन्दा ति बनि नऽः चित (ह्यसऽः) शक्ती वरऽऽय
थवि तोन इः बहस पत कुन ही नाथ॥१०॥

बाह्यान्तरान्तरायालीकेवले चेतसि स्थितिः।
त्वयि चेत्स्यान्मम विभो किमन्यदुपयुज्यते॥११॥

न्यब्रिम भीदऽः भाव, तऽः अन्द्रिम संकल्प
व्यघनौ निशि साफ, कऽरमतिस म्यऽऽनिस
हृदयस अन्दर, अगर जाय रटऽहऽऽख दयि
अदऽः कुस ब्ययि चीज़ छाञ्डुन छु म्येः नाथ॥११॥

अन्ये भ्रमन्ति भगवन्नात्मन्येवातिदुःस्थिताः।
अन्ये भ्रमन्ति भगवन्नात्मन्येवातिसुस्थिताः॥१२॥

केन्ह लूक वछऽमय ही म्यानि भगवान
शरीर रूप स्वरूपस मंज फेरान दुखी
व्ययि केन्ह वछऽमय स्वात्मा स्वरूपस
मंज नच़ान ख्वश त ख्वशहाल ही नाथ॥१२॥

शरीरस मंज़ नचुन गव मायायि फटुन
"हय क्याः गोम" वनुन द्वह किहो रोत
मोहऽः अन्धकार, शरीर, आत्मा, ज़ानऽनुक तस
दिवान दुखऽई दुऽख हर वक्तऽः ही नाथ॥क॥

युस थ्वद यूगी, शरीर मन्दराः ज़ानि
अन्द्रऽः रोजान स्वात्मदीव शिवनाथ
"वुन्य क्या गव" प्रथ कथ सुः वऽछ्य् वऽछ्य्
ख्वश तऽः ख्वशहाल, यति तति शिवनाथ॥ख॥

अपीत्वापि भवद्भक्तिसुधामनवलोक्य च।
त्वामीश त्वत्समाचारमात्रात्सिद्ध्यन्ति जन्तवः॥१३॥

शब्दार्थ

भक्ति अमृत चोन चनऽः रुस ति
साक्षात्कार करनऽः वरऽऽय
कथा चऽऽन्य् यऽऽच़ई कर्य् कर्य्
लूक छी स्यद्धी प्रावान नाथ॥१३॥

भावार्थ

भक्ति अमृत चुन शाक्तोपाय गव
साक्षात्कार वनान शाम्भौपाय
पाठ पूज़ चरचा आनौपाय गव
तमि सऽऽत्य ति वातान च़्यई निशन नाथ॥क॥

भक्ति अमृत यलि पूरऽ पऽऽठिन चव
सुई गव साक्षात्कार दयि चोन
ब्ययि ब्ययि स्यद्धी इमऽः छि आसान
पाठ पूज़ ज़प चरचा, दिवान ही नाथ॥ख॥

भृत्या वयं तव विभो तेन त्रिजगतां यथा।
बिभर्ष्यात्मानमेवं ते भर्त्तव्या वयमप्यलम्॥१४॥

इथऽः पऽऽठ्य् त्र्यन ज़गतन हुन्द पान च़ऽः
धारान त पालान छुख ही विभू
दास छी चऽऽन्य अऽस्य् रछऽःनस लायक,
तिथय पऽऽठ्य् पालना करतऽः असिः तिः नाथ॥१४॥

परानन्दामृतमये दृष्टेऽपि जगदात्मनि।
त्वयि स्पर्शरसेऽत्यन्ततरमुत्कण्ठितोऽस्मि ते।।१५।।

परमानन्दऽः रूपऽः अमृत स्वरूपऽः चानि
विश्वात्मुक साक्षात्कार करित तिः
समावीशऽः(ईकता) रूपः चानिः नालऽःमतिः खऽऽतरऽः
क्याः वनय कोताः, क्रेशान छुस नाथ।।१५।।

देव दुःखान्यशेषाणि यानि संसारिणामपि।
धृत्याख्यभवदीयात्मयुतान्यायान्ति सह्यताम्।।१६।।

भगवानऽः त्र्ययि प्रकारऽः दुऽख ति इम छी
तिम ति चऽऽनिसई स्वरूपसई सम्बन्ध
तवय सऽऽरी लूक तिम बरदाश करान
धैर्य वान धृतऽः नऽऽव्यू, चऽः छुक तवय नाथ।।१६।।

सर्वज्ञे सर्वशक्तौ च त्वय्येव सति चिन्मये।
सर्वथाप्यसतो नाथ युक्तास्य जगतः प्रथा।।१७।।

ही च़्यथरूपऽः चानि सर्वज्ञता ब्ययि
सर्वशक्तिमान पूरऽः आसनऽः किनी
प्रथ प्रकारऽः सताहीन यमि ज़गऽःतुक
आसुन पूरऽः पऽऽठ्य् स्यद्ध छु गछ़ान नाथ।।१७।।

त्वत्प्राणिताः स्फुरन्तीमे गुणा लोष्टोपमा अपि।
नृत्यन्ति पवनोद्धूताः कार्पासपिचवो यथा।।१८।।
यदि नाथ गुणेष्वात्माभिमानो न भवेत्ततः।
केन हीयेत जगतस्त्वदेकात्मतया प्रथा।।१९।।

भगवन म्यच़ हिषिः, बेजान, इमऽः इन्द्रययि
कारुबार करान लबित-ज़्चुव च़्येः आत्मस निश
कपसि लऽष इथऽः पऽऽठ्य हवाहऽः सऽऽत्य
आकाशस मंज़ छि वुडान ही नाथ।।१८।।

इन्द्रियन नय आत्म अभिमान आसि हे
वनऽःहऽऽन नय असी छि करान कार
त्यलिः कुस सना त्राविहे ज़ाञ्ह
च़्येः सऽऽत्य् ईकात्मा, थ्यती नाथ।।१९।।

टीका

इमन द्वन श्लूकन मंज ज़ऽः कथऽः
वनान छु व्यसऽनित श्री उत्पलदीव
ग्वडऽः वनान इन्द्रययि मन ब्वद्ध ह्वेत
म्यच़ हिषिः जड लभान ज़्वुव (ह्वस) स्वात्मस निश
सुई ह्वस रूप ज़्वुव लभित इन्द्रियः
वछान बोज़ान सोचान करानकार
कार करित इमन अभिमान छु गछ़ान
अऽस्य छ्यः कमऽतान्य् करान कारुबार
तमी अभिमानऽःसऽऽत्य आत्मऽः दीव डलान
दपान शायद इन्द्रययि करान सोचान
अगर इः अभिमान मनस आसिहे नऽः
स्वात्मस (शिवस), मशिहे नऽः ईकता नाथ (१९)

वन्द्यास्तेऽपि महीयांसः प्रलयोपगता अपि।
त्वत्कोपपावकस्पर्शपूता ये परमेश्वर।।२०।।

महाकाल कामदीव त्रपुरासुर ही
नाश गय चानि अथऽः ही परमीश
बडऽः पूज़नी भागिवान तिम तिः
चोन क्रूदऽःअग्न लगनऽः, श्रोच़ गई तिम नाथ।।२०।।

महाप्रकाशवपुषि विस्पष्टे भवति स्थिते।
सर्वतोऽपीश तत्कस्मात्तमसि प्रसराम्यहम्।।२१।।

महा प्रकाशऽः स्वरूप ही ईशऽः छुक च़ऽः
पूर्ण प्रकट स्वरूप विश्वप्रकाश मय
यूत चोन अभीदऽः भाव ज़ऽऽनित तिः बऽः
भीदऽः रूप अनिगटि क्याजि फेरान नाथ।।२१।।

अविभागो भवानेव स्वरूपममृतं मम।
तथापि मर्त्यधर्माणामहमेवैकमास्पदम्।।२२।।

अमृतमय आनन्दघन स्वरूप म्योन
अद्वयत स्वरूप, च़ऽई पानऽः भगवन
तोति क्याः म्येः गोमुत, च़ऽई व्ययञ् वनतम्
ज़्यनमरन धर्मस प्यठ, बऽः ठहऽरित नाथ॥२२॥

महेश्वरेति यस्यास्ति नामकं वाग्विभूषणम्।
प्रणामाङ्कश्च शिरसि स एवैकः प्रभावितः॥२३॥

महीश्वर नाव छुस ज़्यवि हुन्द गहऽना
ड्यकस प्यठ निशानऽः परण प्यऽई प्यऽई
जोरऽः कति तस छू सु छु च़्योन टोठा
गुणऽः वान प्रभावऽः स्वस सुई अख नाथ॥२३॥

सदसच्च भवानेव येन तेनाप्रयासतः।
स्वरसेनैव भगवंस्तथा सिद्धिः कथं न मे॥२४॥

प्वज़ अप्वज़ सोरुइ, भाव अभाव मय ज़गत
यमिः किन पानय च़ऽई भगवान
तवय कोनऽः स्यद्धी अलौक्यक हङ्गऽः मङ्गऽः
केञ्ह करनऽः रोस्तुय म्येः बनान छयः नाथ॥२४॥

शिवदासः शिवैकात्मा किं यन्नासादयेत्सुखम्।
तर्प्योऽस्मि देवमुख्यानामपि येनामृतासवैः॥२५॥

शिवनाथस सऽऽत्य् ईकता प्रऽऽवित
तऽम्य् सन्दिस दासस कुस सुऽख छुनऽः प्राप्त
तवय किन पूज़ऽःनी ब्रह्मादिकन ति
चावुन बऽः अमृतऽः मस, पज़िः नाथ॥२५॥

हृन्नाभ्योरन्तरालस्थः प्राणिनां पित्तविग्रहः।
ग्रससे त्वं महावह्निः सर्वं स्थावरजङ्गमम्॥२६॥

प्रथ प्रऽऽनियस हृदयस त यऽड्य् मंज़बाग
जठरानलऽः अग्नऽः रूपऽः रूज़ित
करऽःवुन ग्रास सऽऽरी जड चैतन्य
महाअग्नऽः रूपऽः तिः च़ऽई छुक नाथ॥२६॥

औत्सुक्यविश्वसितनामैकादशं स्तोत्रम्

ग्यारहवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

जगदिदमथ वा सुहृदो
बन्धुजनो वा न भवति मम किमपि।
त्वं पुनरेतत्सर्वं
यदा तदा कोऽपरो मेऽस्तु॥१॥

इः ज़गत या यतिक म्यत्र तय यार
बऽऽइ बन्ध इमौ मंज़ऽः कान्ह न बकार
यमि किन च़ऽई छुक म्येः सारिकुई सार
चानि ख्वतऽः काञ्ह म्योन कति भगवन॥१॥

स्वामिन्महेश्वरस्त्वं साक्षात्सर्वं जगत्त्वमेवेति।
वस्त्वेव सिद्धिमेत्विति याञ्चा तत्रापि याञ्चैव॥२॥

ही प्रभू, परमीश्वर पऽऽन्य पानऽः चई सोरुइ,
इः ज़गत ति चोनुई साक्षात स्वरूप।
काञ्ह अक चीज़ा म्येः स्यद्ध बनि तन
प्रार्थना रूज़ प्रार्थना यऽऽच़्य् भगवन॥२॥

त्रिभुवनाधिपतित्वमपीह य-
त्तृणमिव प्रतिभाति भवज्जुषः।
किमिव तस्य फलं शुभकर्मणो
भवति नाथ भवत्स्मरणादृते॥३॥

समावीशऽः वऽऽल्य् इम चऽऽन्य् भक्ति ज़न
त्रभऽःवनऽः राज ति तिमन गासऽःतुज ज़न
स्वरूपऽः सम्पन्न श्वभऽः करमिशटन
फल ग्वछ अक चऽऽन्य् सुमरण भगवन॥३॥

येन नैव भवतोऽस्ति विभिन्नं
किञ्चनापि, जगतां प्रभवश्च।
त्वद्विजृम्भितमतोऽद्भुतकर्म-
स्वप्युदेति न तव स्तुतिबन्धः॥४॥

भावार्थ

काञ्ह चीज़ छुन ऱ्यॆ प्रकाशऽः निशिः भ्यन
जगत बनावान ब्रह्मा, फ्वलुन चोन आसन
सार्यै अजब अजब, कामिः ऱ्ऽः करन
त्वता ऱ्यऽऽन्य् करऽनऽच्य् कथ कति भगवन

टीका

बोज़ऽवय त्वता करन वोल पानय ऱ्ऽः आसन
त्वता तिः चोनुई स्वरूप छु आसन
त्वता कस करौ, ऱ्यॆः ब्वड छा कान्ह कुनिः
स्वात्मऽः दीवऽः त्वता करनुक सवाल कति भगवन॥४

त्वन्मयोऽस्मि भवदर्चननिष्ठः
सर्वदाहमिति चाप्यविरामम्।
भावयन्नपि विभो स्वरसेन
स्वप्नगोऽपि न तथा किमिव स्याम्॥५॥

ही विभू सर्वदा पूज़ऽःवुन छुस बऽः, ऱ्ऽः
ऱ्यॆ अभिन्न छुस लगातार रोज़ान
ईच़ भावना करित ति, कोनऽः पानय बऽः
स्वप्नस मंज़ तिः, तिथुई बनान भगवन॥५॥

ये मनागपि भवच्चरणाब्जो-
द्भूतसौरभलवेन विमृष्टाः।
तेषु विस्त्रमिव भाति समस्तं
भोगजातममरैरपि मृग्यम्॥६॥

युस काञ्ह भक्ति ज़न, चानि चरणऽः कमलऽः मंजऽः
नेरऽः वऽनि सुगन्धी, अक रछ लभि मज़ऽः
दीवताहौ कऽऽञ्छमऽत्य्, सऽऽरी मज़ऽः
भासान तस दुरगन्ध, भरित भगवन॥६॥

हृदि ते न तु विद्यतेऽन्यदन्य-
द्वचने कर्मणि चान्यदेव शंभो।
परमार्थसतोऽप्यनुग्रहो वा
यदि वा निग्रह एक एव कार्यः॥७॥

महादीवऽः चऽऽनिस मनस ज़्यविः या कर्मस
पानऽः वऽन्य ह्यकि नऽः भीद ज़ाञ्ह ति बनिथ
प्वज़ चोन भक्त सरल स्वभाव छुस
ज़ेर कर ज़बर कर, कर अकुई भगवन॥७॥

मूढोऽस्मि दुःखकलितोऽस्मि जरादिदोष-
भीतोऽस्मि शक्तिरहितोऽस्मि तवाश्रितोऽस्मि।
शम्भो तथा कलय शीघ्रमुपैमि येन
सर्वोत्तमां धुरमपोज्झितदुःखमार्गः॥८॥

मूढ छुस तऽ दुऽखऽनई मंज ह्यनऽः आमुत
बुजऽरऽः तऽ ब्यथि ब्याय दूशौ कोञ्पमुत
शक्ती हीन छुस तोति छुस बऽः आमुत
चऽऽन्य् आशा ह्यत ऱ्यई शरन भगवन
त्युथ करतऽः केञ्छा युथ वुऽन्य् जलजल
दुऽखऽः दायक वथ त्रावऽः बनऽः बऽः न्यर्मल
थदि ख्वतऽः थऽज़्य् पदवी प्रऽऽवित बऽः
(ऱ्यऽई मंज़ गछऽः लय वारऽः पऽऽठ्य् भगवन)॥८॥

त्वत्कर्णदेशमधिशय्य महार्घभाव-
माक्रन्दितानि मम तुच्छतराणि यान्ति।
वंशान्तरालपतितानि जलैकदेश-
खण्डानि मौक्तिकमणित्वमिवोद्वहन्ति॥९॥

आरऽः क्रऽञ्द्य् नाद म्यऽऽन कम पायि आसान
अच्रिथ चऽऽनिस कनस थ्वद म्वल प्रावान
इथऽः पऽऽठ्य् अऽऽव्युल रूदऽः कतरऽः अक
स्वात नक्षत्रऽः बाञ्सस मंज, मुऽक्तऽः फ्वल छु बनान॥९

किमिव च लभ्यते बत न तैरपि नाथ जनैः
क्षणमपि कैतवादपि च ये तव नाम्नि रताः।

शिशिरमयूखशेखर तथा कुरु येन मम
क्षतमरणोऽणिमादिकमुपैमि यथा विभवम्॥१०॥

ही ईश्वरऽः अकि ख्यनऽः ति अगर केञ्ह ज़न
छलऽः कपटऽः सऽऽत्य् तिः नाव चोन स्मऽरन
तिम लूक ति मनऽः किन युछऽःमुत कोञ्छऽमुत
प्रथ काञ्ह फल छि लभन ही भगवन।

डेकिः चन्द्रमऽः शूभऽवनि शिवनाथ जी
त्युथ त्युथ रुत वोन्य म्यति केन्ह करतऽः चऽई
मरनऽचि फाञ्सि मंजऽः म्ये न्यबर कडिथऽई
ऐश्वीर्यः दार अष्टऽः स्यद्ध दिम भगवन॥१०॥

शम्भो शर्व शशाङ्कशेखर शिव त्र्यक्षाक्षमालाधर
श्रीमन्नुग्रकपाललाञ्छन लसद्भीमत्रिशूलायुध।
कारुण्याम्बुनिधे त्रिलोकरचनाशीलोग्रशक्त्यात्मक
श्रीकण्ठाशु विनाशयाशुभभरानाधत्स्व सिद्धिं
पराम्॥११॥

क्याः वनऽः रूप चऽऽन्य कम कम नाव वनऽः
लछऽः नोव छुक चऽः तोति केन्ह गञ्ज़रऽः
कल्यान कारक वनान छी शम्भू
सन्ताप गालऽःवुन शर्व नऽऽव्य भगवन॥क॥

चन्द्र शेखरस वनान श्यशांक शेखर
कल्यान स्वरूप छुक ही शिवऽः शंकर
त्रनयन दार त्र्यक्ष अक्षमाल नऽऽल्य् छय
कलऽः खपरि माल निशानऽः चोन भगवन॥ख॥

चमकदार खोफनाक त्रिशूल दऽऽरी
आयुऽद्ध धारान बऽड्य् बऽड्य सऽऽरी
दया सागरऽः छुक त्रलूकी बनावान
शक्ती चऽऽन्य अलौक्यक ही भगवन॥ग॥

श्री कण्ठ सऽऽरी अशुभ छुक गालान
मुक्ती रूप स्यद्धी छुक भखऽशावान
गुऽण चऽऽन्य कुस ह्यकि गञ्ज़रऽऽवित
अनुगृह पानय कर दीनस भगवन॥घ॥

पापऽः भार म्यऽऽन्य करित नष्ट जलजल
उत्तम सिद्धी कर प्रदान म्येः भगवन॥११॥

तत्किं नाथ भवेन्न यत्र भगवान्निर्मातृतामश्नुते
भावः स्यात्किमु तस्य चेतनवतो नाशास्ति यं शङ्करः।
इत्थं ते परमेश्वराक्षतमहाशक्तेः सदा संश्रितः
संसारेऽत्र निरन्तराधिविधुरः क्लिश्याम्यहं केवलम्॥१२

जगतस मंज़ छा कुनि काञ्ह चीज़ प्रभू
युस नऽः बनावान, चऽई छुक ही विभू
कऽम्य् सुन्द काञ्ह खयाल संकल्प व्यकल्प
युस नऽः चोनुई हुकुम आसान भगवन।

परिपूर्ण शक्तिमान चऽई पानय
शरण छुस च्यऽई आमुत जानानय
ज़गतस मंज़ दुऽख तऽ दऽऽदी वछित
मन छुम रोज़ान व्याकुल भगवन॥१२॥

यद्यप्यत्र वरप्रदोद्धततमाः पीडाजरामृत्यवः
एते वा क्षणमासतां बहुमतः शब्दादिरेवास्थिरः।
तत्रापि स्पृहयामि सन्ततसुखाकाङ्क्षी चिरं स्थास्नवे
भोगास्वादयुतत्वदङ्घ्रिकमलध्यानाग्र्यजीवातवे॥१३॥

यति सखऽत चालुन, दुऽख बुजर त मरुन
बोज़व यलि इन, अज़, होर कुन थावुन
वुछुन बोजुन मज़ऽः, तुलन ओस सुखऽदा
तिम छि चलऽवऽन्य्, ख्यनऽः भंगुर भगवन।

कांछान छुस सुऽख, युस ज़न पोशि
च्यथ आनन्द चमत्कार, युस न ज़ांह लोसि
तवय पादि कमल, चऽऽन्य ब पूज़ऽहऽऽ
सृष्ट जिन्दगी छ्यम, कामना भगवन॥१३॥

हे नाथ प्रणतार्तिनाशनपटो श्रेयोनिधे धूर्जटे
दुःखैकायतनस्य जन्ममरणत्रस्तस्य मे साम्प्रतम्।
तच्चेष्टस्व यथा मनोज्ञविषयास्वादप्रदा उत्तमाः
जीवन्नेव समश्नुवेऽहमचलाः सिद्धीस्त्वदर्चापरः॥१४॥

ही कल्यान सागर ही जटा दऽऽरी
घरऽः म्येः मंज़ करान दुऽख छी सऽऽरी
ज़्यनऽः तय मरनऽः खोफऽः छुस कऽऽञ्पानय
ब्वड सबऽबाः करतऽः पानय भगवन
पूजायि पनऽःनि मंज़ म्येः, जल जल थविथई
मनोहर स्वादिष्ट दशा दिम भगवन
तमिचय चमत्कारऽः दाता इमऽः छय
ज़ाञ्ह नऽः चलऽःवुन स्वरूप हावान तिमऽः तिमऽः छय
ज़िन्दऽः पानय तिमय स्यद्धियि दित म्येः
ज़ीवन म्वक्ती दिम, व्वऽन्य् ही भगवन॥१४॥

नमो मोहमहाध्वान्त-
ध्वंसनानन्यकर्मणे।
सर्वप्रकाशातिशय-
प्रकाशायेन्दुलक्ष्मणे॥१५॥

अन्धकार बडऽःब्वड मूहऽः रूप युस छू
सुई पूरऽः पऽऽठ्च गालऽःनस ल्वगमुत शिव
सारी प्रकाशऽः थ्वद तसुञ्दई प्रकाश छु
जय जय चन्द्रकला, ढ्यकऽः वोल भगवन॥१५॥

अनुभव

सोन ग्वरऽःदीव भगवान ईश्वर स्वरूप छू
तस तिः ढ्यकस प्यठ चन्द्रमऽः न्वन छू
तवऽःकिन ति ज़ोन म्येः सु पानऽः शिव छू
कर दीनः जय जय, चन्द्रकला दार लक्ष्मन॥

रहस्यनिर्देशनाम द्वादशं स्तोत्रम्

बारहवें स्तोत्र के आधार पर सत्गुरु देव के
दासों के दास "दीन" का टूटा फूटा प्रयास

सहकारि न किञ्चिदिष्यते
भवतो न प्रतिबन्धकं दृशि।
भवतैव हि सर्वमाप्लुतं
कथमद्यापि तथापि नेक्षसे॥१॥

काञ्ह चीज न मददगार साक्षात्कारस
न छु तथ रोकन वोल कुनि कांह
सऽऽरिसई दयि, चऽऽनी व्याप्ती
क्याजि नऽः वुनि तिः, बोज़नऽः इवान नाथ॥१॥

अपि भावगणादपीन्द्रिय-
प्रचयादप्यवबोधमध्यतः।
प्रभवन्तमपि स्वतः सदा
परिपश्येयमपोढविश्वकम्॥२॥

प्रथ कुनि चीज़ऽः मंज़ऽः यन्द्रययि ढेरऽः मंज़ऽः
च़्यथ प्रकाश तुर्यिः अवस्था मंज तिः आसऽव्वन
सर्वदा सर्वथा भीदऽः भाव गालऽःवुन
यकदम पऽऽन्य् पानऽः वछऽःहऽऽथ भगवन॥२॥

कथं ते जायेरन्कथमपि च ते दर्शनपथं
व्रजेयुः केनापि प्रकृतिमहताङ्केन खचिताः।
तथोत्थायोत्थाय स्थलजलतृणादेरखिलतः
पदार्थाद्यान्सृष्टिस्त्रवदमृतपूरैर्विकिरसि॥३॥

ही भगवानऽः बजर चोन कोताः बऽः वनऽः
अनुगृह च़ऽः करान किथऽः कऽन्य क्याः बऽः वनऽः
म्यच़्ि फलिः गासऽः तुज़ि पाञकतरऽः मंजऽः ताम
भऽक्तयन चित अमृत वरशावान भगवन॥क॥

थ्वद तुल्य् तुल्य छुहऽक दया करान रोज़ान
कमिताञ्य् अलौक्यक स्वभावऽः शूभऽःरावान
भीद गऽऽलित तिम अनुभव करऽःवऽन्य्
अमृतमय चिदानन्द योतई भगवन॥ख॥

ज़ऽऽन्य मंज तिम किथऽः कऽन्य छि इवान
त्युथ होश आम अऽछय्, कति अनि भगवन
कमि सना सातऽः तिम ज़ामऽत्य् आसान
च्यऽई सऽऽत्य किथऽः, मीलित तिम भगवन॥३॥

साक्षात्कृतभवद्रूपप्रसृतामृततर्पिताः।
उन्मूलिततृषो मत्ता विचरन्ति यथारुचि॥४॥

स्वरूपऽः साक्षात्कारऽः चानिः पेढऽःवनिः
आनन्दऽः अमृत रस च्यतछी तृस
तृषना मूलऽः मुञ्जि गऽऽलित मसत
पनऽऽनी मरज़ियि फेरान तिम नाथ॥४॥

न तदा न सदा न चैकदे-
त्यपि सा यत्र न कालधीर्भवेत्।
तदिदं भवदीयदर्शनं
न च नित्यं न च कथ्यतेऽन्यथा॥५॥

न त्यलि न सदा न कुनि अकि वक्तय
यमुक केन्ह समयि बन्द सोच न बनानई
सुई चोन साक्षात्कार, ही प्रभू जी
अऽऽसित तिः नऽ अऽऽसित, क्याः वनऽः भगवन॥५॥
(न अऽऽसिथ, अऽऽसिथई क्याः वनऽः भगवन)

त्वद्विलोकनसमुत्कचेतसो
योगसिद्धिरियती सदास्तु मे।
यद्विशेयमभिसन्धिमात्रत-
स्त्वत्सुधासदनमर्चनाय ते॥६॥

मन छुम क्रेशान चानि दर्शनऽः बापत
बस अक स्यद्धी कर प्रधान भगवन
चानि पुज़ायि हंऽज यच्छा करऽवुनुई
वातुन गछऽः चिदानन्दऽः धाम भगवन॥६॥

निर्विकल्पभवदीयदर्शन-
प्राप्तिफुल्लमनसां महात्मनाम्।
उल्लसन्ति विमलानि हेलया
चेष्टितानि च वचांसि च स्फुटम्॥७॥

निर्विकल्प स्वरूप चोन, दर्शुन लभित
इमन महात्माहन हृदय आमुत फ्वलित
कारुबार कथबात पऽऽन्य् पानय तिमन
न्यर्मल लूकऽः ह्यतऽःकऽऽरी भगवन॥७॥

भगवन्भवदीयपादयो-
र्निवसन्नन्तर एव निर्भयः।
भवभूमिषु तासु तास्वहं
प्रभुमर्चेयमनर्गलक्रियः॥८॥

ज्ञान तऽ क्रिया चान्यन चरनन मंज़
सारिनई लूकऽः अवस्थायन मंज़
निर्भय बेखोफ स्वतन्त्र पऽऽठिन
रोज़ऽहऽऽ, पूज़ा ़च्येः करऽवुन भगवन॥८॥

भवदङ्घ्रिसरोरुहोदरे
परिलीनो गलितापरैषणः।
अतिमात्रमधूपयोगतः
परितृप्तो विचरेयमिच्छया॥९॥

लीन चरणऽः कमलन चान्यन मंज़ गछित
ब्यथि ब्यथि कांक्षायिः पूरऽः श्रमऽरऽऽवित
आत्मानन्द रूप अमृत च्यत बऽ तृस
पनऽनी मरज़ियि फेरऽःहऽऽ ही नाथ॥९॥

यस्य दम्भादिव भवत्पूजासङ्कल्प उत्थितः।
तस्याप्यवश्यमुदितं सन्निधानं तवोचितम्॥१०॥

यस कऽऽञ्सि मनशस पाखण्ड् किन ति
पूज़ा च़्येः करनुक व्वथ संकल्प प्रभू
तथ लायक चोन साक्षात्कार तस (ति)
ज़रूरी छु बनान ही आशुतोश नाथ॥१०॥

भगवन्नितरानपेक्षिणा
नितरामेकरसेन चेतसा।
सुलभं सकलोपशायिनं
प्रभुमातृप्ति पिबेयमस्मि किम्॥११॥

म्येः ब्ययि कुनिची कांक्षायि रऽसऽतिस
कीवल समावीशऽः शोकऽः हृदयः भरितिस
प्रथ शायि व्यापक स्वलभ च़्येः दयि सुन्द
मिलापः, यऽड भरित, गछ्या प्राप्त ही नाथ॥११॥

त्वया निराकृतं सर्वं हेयमेतत्तदेव तु।
त्वन्मयं समुपादेयमित्ययं सारसंग्रहः॥१२॥

सोरुई इः ज़ानःनी छु पूरऽःपऽऽठय त्रावनी
छु अगर च़्येः निशिः भ्युन आसऽवोनई
कुन अगर छु च़्यऽई सऽऽत्य् हृदयस छु थावनी
ई छु सार, यमिः सानि सम्प्रदायुक नाथ॥१२॥

भाव तथा टीका

काञ्ह चीज़ छु नऽः च्येः निशि भ्युन आसऽःवुन
आकाशऽः पोश तिः च़ऽई छुक आसऽःवुन
कुनि भावस सत्ता कति इयिः च़्येः वरऽऽय
ती छु ज़ानुन यति वारऽः पऽऽठिन नाथ॥क॥

युस काञ्छ़ा वनि च़ऽः छुक पानऽः अक
सोरुई इः भीदऽः भाव ज़ानुन छु भ्याक अक
अदऽः अक त ब्याख ब्ययि, बऽः तऽः च़ऽः भावई
थप करित छु ब्वन कुन त्रावान तस नाथ॥ख॥

अभीद भाव पऽज़्य् पऽऽठ्य सोरुई छु चोनुई
भीदाभीद तिः अभीदऽः मंज़ऽः नेरऽनुई
अदऽः भीदऽः भावस ति च़ऽई जान त्रावनई
ई छि लीला चऽऽन्य् कुस ज़ानि ही नाथ॥ग॥

सार – (सौः बीज प्रक्रिया)

भीदऽः भाव सोरुई सत रूपई ज़ानिः
भीदाभीद शक्ति रूपः युस मानिः
सुई अभीद भावस दयायि चानि ज़ानिः
आः आः छु वाः वाः "सौः" शूभान नाथ॥घ॥

भवतोऽन्तरचारि-भावजातं
प्रभुवन्मुख्यतयैव पूजितं तत्।
भवतो बहिरप्यभावमात्रा
कथमीशान भवेत्समर्च्यते वा॥१३॥

ज़ानऽः वान आसान महीश्वर मऽऽनिथई
च़्येः निशिः भ्यनऽःरुस ईः सम्सार पुज़ान
च़्येः निशि भ्यनऽः दार केन्हनऽः तिः कति छू
छुनऽः कुनिः तऽः किथऽः पऽऽठ्य पूज़िः ही नाथ॥१३॥

च़्येः निश भ्यनऽःदार कति आसि काञ्ह चीज
आसि नऽतऽः किथऽः पऽऽठ्य काञ्ह तत पूज़ि नाथ।

निःशब्दं निर्विकल्पं च निर्व्याक्षेपमथानिशम्।
क्षोभेऽप्यध्यक्षमीक्षेयं त्र्यक्ष त्वामेव सर्वतः॥१४॥

अनाहत अऽऽसित निर्विकल्प स्वरूप
ही त्रिनेत्रधारी ही प्रत्यक्ष रूप
कारुबारऽः व्याकुलऽःतायि मंज़ ति सर्वदा
पूरऽः पऽऽठ्य् न्यर्विघन वछऽःहऽऽत च़ऽई नाथ॥१४

प्रकटय निजधाम देव यस्मि-
स्त्वमसि सदा परमेश्वरीसमेतः।
प्रभुचरणरजःसमानकक्ष्याः
किमविश्वासपदं भवन्ति भृत्याः॥१५॥

चोन ख्वरऽः मल ह्यू दास छुस बऽः बोज़तम
क्याः छ्यना पछ़ म्येः प्यठ ईच़ रऽछ़ भगवन
परा शक्ती ह्यथ यति सदा च़ऽः रोज़न
च़्यथस्वरूप सुई पनुन घरऽः, म्यति हाव नाथ॥१५॥

दर्शनपथमुपयातोऽप्यपसरसि
कुतो ममेश भृत्यस्य।
क्षणमात्रकमिह न भवसि
कस्य न जन्तोर्दृशोर्विषयः॥१६॥

ही स्वऽऽमी क्याज़िः च़ऽः म्येः दासस तिः
दर्शुन हऽऽविथऽई ब्ययि जल खटान पान
अकि रच़ि खऽऽतरऽः सम्सारस मंज़ ति
प्रथ प्रऽऽनियस दर्शुन, दिवान छुक नाथ॥१६क॥

भाव छु वनऽनुक भक्त बऽः चोन छुस
लूकऽःनऽई ह्यू क्याजि म्येः ति बरताव
दर्शुन दिवान कम कम प्रथ कऽऽन्सि छुक
पूरऽःपऽऽठ्य सर्वदा ग्वछ़ म्येः बनुन ही नाथ॥१६ख॥

कुनि कुनि वक्तन प्रथ काञ्ह ज़ानान
"सोरुई केञ्ह छु चोनुई स्वरूप"
प्रथ वक्तऽः अनुभव यहोय ग्वछ म्ये रोज़ुन
मशुन ज़ाञ्ह ग्वछ नऽः इः भाव, म्येः ही नाथ॥१६ग॥

ऐक्यसंविदमृताच्छधारया
सन्ततप्रसृतया सदा विभो।
प्लावनात् परमभेदमानयं-
स्त्वां निजं च वपुराप्नुयां मुदम्॥१७॥

लगातार वसऽः वनि अभीद ज्ञानऽः रूपचऽः
न्यर्मल अमृतऽः धारिः फ्वलऽमुत बऽः
चोन त पनुन इः स्वरूप मिलऽःनऽऽवित क्यत
सर्वदा छावऽःहऽऽ परमऽः आनन्द नाथ॥१७क॥

तथा

अद्वैत दृष्टी रूपऽच न्यर्मल
अमृत धारा प्यथ म्ये सर्वदा
अभीदऽः रूपऽः चोन तऽः म्योन स्वरूप मीलित
परमानन्दऽः प्राप्ती म्येः, रूज़तन ही नाथ॥१७ख॥

अहमित्यमुतोऽवरुद्धलोका-
द्भवदीयात्प्रतिपत्तिसारतो मे।
अणुमात्रकमेव विश्वनिष्ठं
घटतां येन भवेयमर्चिता ते॥१८॥

लौकिक भीदऽःहीन, अहं विमर्शाः
स्वरूपःज्ञान सार प्रकाश, अहं विमर्शाः
"व्यथानस[१]" मंज़ ति, दितऽः म्येः, अहं विमर्शाः
युथ बऽः चोन प्वक्तऽः, पूज़ऽऽर्य बनऽःहऽऽ नाथ॥१८॥

अपरिमितरूपमहं
तं तं भावं प्रतिक्षणं पश्यन्।
त्वामेव विश्वरूपं
निजनाथं साधु पश्येयम्॥१९॥

इम तिम चीज़ सऽऽरी प्रथ वक्तन म्येः
वऽछ वऽछ पूरऽः पऽऽठय् च़ऽई वारऽः भास्तम
ज़गतरूप ति म्येः अहं रूपः भास्तम
स्वात्मरूपऽः बेअन्त च़ऽई भास्तम नाथ॥१९॥

भाव

भाव छू वनऽःनुक सोरुई केन्ह यति
बहुरूपऽः छु चोनुई स्वरूप
अनुभव ग्वछ म्येः इः प्रथ विज़ि रोज़ुन
च़ऽई छुक च़ऽई छुक सोरुइ केन्ह नाथ॥१९॥

भवदङ्गगतं तमेव कस्मा-
न्न मनः पर्यटतीष्टमर्थमर्थम्।

---

१. प.अ. "प्रथ दशायि"

प्रकृतिक्षतिरस्ति नो तथास्य
मम चेच्छा परिपूर्यते परैव॥२०॥

शब्दार्थ

फेरुन छु म्यऽऽनिस मनस त कोनऽ: फेरान
तिमऽनई चीज़न मंज इम छि अंग संग चऽऽन्य्
तमिः सऽऽत्य् अऽम्य् सऽञ्ज़ खसलत ति डलिः नऽः
तऽः म्यऽऽन्य अभिलाशा तिः गछि पूर्ण नाथ॥२०॥

सर्व सार इस विषय पर
कुछ टूटे फूटे भाव।

युत युत ख्वश करिः मनस त्वत गछितन
च्ये निशः अभिन मऽः तिम चीज़ म्येः भऽऽस्य्तन
मनऽः किस स्वभावस ति नऽः त्यलि केन्ह हऽऽनी
तऽः म्यऽऽन्य् बऽड अभिलाशा ति पूर्ण गछि नाथ॥क॥

फेरुन छु म्यऽऽनिस मनस तऽः फीरतन, मगर भगऽवानऽः
तिमऽःनई चीज़न मंज़
इम ही च्यथ रूपऽः बनेमऽत्य आसऽः हऽऽन, अभिन्न
सिरिफ च्येऽइ मंज़ नाथ
अदऽः तमिः सऽऽत्य इयि नऽः केन्ह हऽऽनी, तमिः किस
स्वभावस मंज़
म्यऽऽन्य् चऽः लभऽनऽच् यच्छा ति गछि पूरऽः, तिथय
पऽऽठय् ही नाथ॥ख॥

मगर कुस चीज़ छु नऽः अभिन्न च्यः निश ही म्यानिः
भगवानऽः
छुना इः सोरुई केञ्ह चऽऽनी अंग ही म्यानिः भगवानऽः
अदऽः फीरतन थूर्तन युत ख्वश करिः मनस ही म्यानिः
भगवानऽः
अनुभव रोज़तन म्येः छु नऽः च्येः निश केन्ह ति भ्यन्न
ही म्यानिः भगवानऽः॥ग॥

किथऽः आसि किथऽः पऽऽठ्य् भ्यन्न आसि केन्ह
सोरुई केन्ह चऽई छुक तऽः मगर छुक नऽः केन्ह
पनुन पान पानय खटित सासऽः नोव चऽः पानय बनिथ
कुन छुक त कुनिरऽः मंजय द्वयुम भास ही नाथ॥घ॥

अक अक चीज़ चऽः वछ पानय पान आसान
सोरुई केन्ह इकवटऽः ति वछ पानय पान आसान
सोरुई केन्ह नऽःकेन्ह ति वछ पानय पान आसान
सारी थ्वद कम तऽः ज़्यादऽः वछ पानय पान आसान
आसान गछिई चऽः वछ आसान पानय पान आसान
वछक तिः नय छुः नऽः ब्ययि केन्ह आसान पानय पान
आसान
पान गव ज़ान तऽः ज़ान गव पान पानय पान आसान
ज़ान वारऽः पान "दीनऽः" भगवान पानय पान
आसान॥ङ॥

इमय व्यषय चऽई मंज़ आसन लय गऽऽमऽत्य्
तिमनऽई मंज़ अऽऽस्य्तन इः मन म्योन फेरान
अदः अमिकिः फेरनुक स्वभाव ति अऽत्य् रोज़िः
तऽः बडि ख्वतऽः बऽड्य् म्यऽऽन्य लालसा ति गछि पूर्ण
ही नाथ॥२०॥

शतशः किल ते तवानुभावा-
द्भगवन्केऽप्यमुनैव चक्षुषा ये।
अपि हालिकचेष्टया चरन्तः
परिपश्यन्ति भवद्वपुः सदाग्रे॥२१॥

ऐश्वर्यिः सम्पन्न ही म्यानि भगवन
हतऽः बऽद्य् छि तिम ति शकलि किन ग्रीस जन
मगर स्वरूप चोन चानिः प्रभावऽः सऽऽत्यन
इमऽवऽई अछियौ ब्रोञ्ठऽः कनि वछान नाथ॥२१॥

न सा मतिरुदेति या न भवति त्वदिच्छामयी
सदा शुभमथैतरद्भगवतैवमाचर्यते।

अतोऽस्मि भवदात्मको भुवि यथा तथा सञ्चरन्
स्थितोऽनिशमबाधितत्वदमलाङ्घ्रिपूजोत्सवः॥२२॥

स्वः बुद्धी छ्यनऽः ज़ाञ्ह उदयस ति इवान
ख्वसऽः नऽः चानि यच्छायिः अनुसार आसान
अमी किन सऽऽरी जान तऽः ब्ययिः बदकार
करनऽः आय चानी अथऽः ही म्यानि भगवान॥
इथऽः पऽऽठ्य् पकऽः तिथऽः पऽऽठिण ही नाथ
चानी स्वरूपऽः स्वस छुस पूरऽः आसान
बऽई अदऽः छ्यनऽः रुउस त व्यग्नऽः रुउस उत्सव
न्यर्मल पादि कमलऽः पूजा हुन्द बनान नाथ॥२२॥

भवदीयगभीरभाषितेषु
प्रतिभा सम्यगुदेतु मे पुरोऽतः।
तदनुष्ठितशक्तिरप्यतस्त-
द्भवदर्चाव्यसनं च निर्विरामम्॥२३॥

ब्वद्ध म्यऽऽन्य् ग्वडऽःन्यत ग्वऽब्य् ग्वऽब्य् वाक चऽऽन्य्
वारऽः पऽऽठ्य ज़ऽऽनतन त शूभितन ही नाथ
तिमऽवऽई मूजूब कर्म करनस किच
अदऽः शक्ती पूरऽः बनितन म्ये प्राप्त
पतऽः समावीशऽः रूपऽः अलौक्यक पूज़ि हऽञ्ज्य्
लालसा रूज़तन निरन्तर म्येः प्राप्त ही नाथ॥२३॥

व्यवहारपदेऽपि सर्वदा
प्रतिभात्वर्थकलाप एष माम्।
भवतोऽवयवो यथा न तु
स्वत एवादरणीयतां गतः॥२४॥

युसऽः कथ पऽज़ छ्येः आसऽःवऽन्य भगवान
सोरुई केन्ह छु चऽऽनी अंग
व्यवऽहारस मंज़ तिः ती ग्वछ म्ये भासुन
छुनऽः इमन पनुन केञ्ह म्वल या रंग नाथ॥२४॥

तथा

व्यवहार करनस मंज़ ति सर्वदा
भऽऽस्यूतन म्येः इः सोरुई केञ्ह प्रभू
पऽज़्य् पऽऽठ्य युस इम अंग छि चऽऽनी
न अलग पननिः कुनिः म्वलऽः केञ्ह नाथ॥२४॥

मनसि स्वरसेन यत्र तत्र
प्रचरत्यप्यहमस्य गोचरेषु।
प्रसृतोऽप्यविलोल एव युष्म-
त्परिचर्याचतुरः सदा भवेयम्॥२५॥

ख्वत त्वत फीरतन मन म्योन,
पनऽः निस स्वभाविक रूपस मंज़
विषय सीवन करनस कोनऽः आसि इः,
ल्वगमुत यथ जगतस मंज़
चञ्चलता सऽऽरऽई त्रऽऽवित ग्वछुस,
बऽः रोजुन गाटऽजारस मंज
द्वह त रात चऽऽनी सिरिफ चऽऽनी उपासना
पूजा करान ही नाथ॥२५॥

भगवन्भवदिच्छयैव दास-
स्तव जातोऽस्मि परस्य नात्र शक्तिः।
कथमेष तथापि वक्त्रबिम्बं
तव पश्यामि न जातु चित्रमेतत्॥२६॥

चानी अनुगृह रूपऽः यच्छा शक्ती, किन ही भगवन
बन्योस बऽः चोन दासि खास, ब्ययि कुनि छा शक्ती
तोति क्याजि छुस नः बऽः चोन, परा शक्ती रूप
मुऽखऽः मण्डल ज़ाञ्ह ति वछान, आश्चर्यः छु नाथ॥२६॥

समुत्सुकास्त्वां प्रति ये भवन्तं
प्रत्यर्थरूपादवलोकयन्ति।
तेषामहो किं तदुपस्थितं स्यात्
किं साधनं वा फलितं भवेत्तत्॥२७॥

चऽः लभनऽः खऽऽतऽरऽः ह्वल गऽडित इम भगत
प्रथ चीज़ऽः, कथिः, भावऽः, मंज़ऽः दर्शुन करान चोन

कमि सना साधऽनायि तिम छिः ती लभान
किथऽः कऽन्य् कुस फल तिम छि प्रावान नाथ॥२७॥

भावा भावतया सन्तु
भवद्भावेन मे भव।
तथा न किञ्चिदप्यस्तु
न किञ्चिद्भवतोऽन्यथा॥२८॥

प्रथ काञ्ह चीज ही म्यानि शिवऽनाथ
चानि प्रभावऽः म्येः भऽऽसितन च़ऽई योत
युस काञ्ह चीज च़्येः निश भ्युन म्येः भासि
सु छुनऽः केञ्ह तऽः आसि कतिः ही नाथ॥क॥

प्रथ काञ्ह चीज़ ही म्यानिः भगवान
चानिः दयायि भऽऽस्य्तन म्येः च़ऽई योत
यऽऽनी चऽऽन्य् तिछ कृपा म्येः अऽऽस्य्तन
प्रथ कुनिः मंज़ऽः वुछिः बुथ चोनुई योत॥ख॥

युस काञ्ह चीज च्येः निशिः भ्युन म्येः भासि
आसि नऽः सु केन्ह ति, बऽः वुछऽः हऽऽ च़ऽई योत
भ्युन म्येः ग्वछुम नऽः च्येः निशिः केञ्ह भासुन
वुछऽः हऽऽत द्वह त रात च़ऽई योत च़ऽई योत॥ग॥

वन्तऽः कति केन्ह छू भ्युन छु च़्येः निशिः
छुना इः सोरुई च़ऽई योत चऽई योत
बऽः तिः च़ऽइ, च़ऽः तिः बऽई, ब्ययि कति इइः केञ्ह
सोरुइ केञ्ह छु च़ऽई योत च़ऽई योत
छुपऽः कर दीनऽः वनुन छु ननुन
अन्द्रऽः न्यब्रऽः वछतन सुः, च़ऽई योत च़ऽई योत
सत्गुरन करऽनई दया बडऽः बऽड्य् च्येः
पान तऽः शिव होवनय, च़ऽई योत च़ऽई योत॥२८॥

यन्न किञ्चिदपि तन्न किञ्चिद-
प्यस्तु किञ्चिदपि किञ्चिदेव मे।
सर्वथा भवतु तावता भवान्
सर्वतो भवति लब्धपूजितः॥२९॥

युस नऽः छु केञ्ह सु मतऽः अऽऽस्य्तन केञ्ह
त युस छु केञ्ह सुई सर्वदा म्येः अऽऽस्यतन केन्ह
अमी सऽऽत्य सदा म्यानि चित्रूपऽः भगवन
च़ऽः इक म्ये लभनऽः तऽः पूज़नऽः म्यानि अथऽः ही नाथ॥२९॥

छुः नऽः क्याः छुः नऽः ति, यथ नऽः दयि सऽन्ज़ सत्ता छ्येः

छुः क्याः छुः ती योत, इः पानऽः भगवान छु
भ्युन्न छुनऽः तस निशिः केन्ह, तऽः सारी निशिः अभिन्न छु
तवय छु ती यथ मंज़ सु छु, तऽः तस वरऽऽय नऽः कुनि केञ्ह नाथ

छु उत्पल देव सुई त क्षेमराज टीकाकार तिः सुई
स्वामी म्योन श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मन जुव ति पानऽः सुइ
सऽऽरऽई तोत्रावली तिः सुई तऽः रहस्य निर्देश नोव स्तोत्र तिः सुई

तमी व्वन द्वयि लटि तमी फिकिरिः तोर तऽः
कऽऽशुर ति करान दीनऽः सुई

सार

सार सार वारऽः पऽऽठिन सार
सारुनय तगी तऽः लभक पानय सार
सारिकुई सार छु वछ सार पानय सार
सारक नय छु शाहमार, सार सार च़ऽः लभक सार
सम्सऽऽरी चीज़न सम्सारता अपऽज्य छि
तथ मंज़ ति दयिः सऽञ्ज़ सत्ता यऽऽच्य पऽज्य् छि
सत्ता नय दयि सऽन्ज़ आसि प्रथ कुनि मंज़
शकल सूरत सऽऽरई हेच बिलकुल अपऽज़्य् छि
शकलि सूरऽच़ मंज़ तिः सिरिफ तऽम्य् सऽञ्ज़ऽई सत्ता छि
तत हदस तान्य् सु ति पऽज़्य् पऽऽठ्य पुज़ऽई छि
यऽऽनी ईश्वर स्वरूप छु इः सोरुई केन्ह
ती ज़ान दीनऽः, सुई छु पानय इः सोरुइ केन्ह॥

जय गुरूदेव

संग्रहस्तोत्रनाम त्रयोदशं स्तोत्रम्

तेरहवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

जय गुरुदेव

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं
मां प्रति स्थितमिदं शृणु प्रभो।
सौख्यमेष भवता समागमः
स्वामिना विरह एव दुःखिता॥१॥

छ्वटऽरित इकऽःवटऽः स्वख त द्रख म्योनुई
वारऽः पऽऽठ्य बोज़तम ही प्रभू जी।
स्वख छुम म्येः च़्यऽई सऽऽतिन मिलऽचार
द्रख छुम च़्यऽई निशिः छ्चनऽः गछ़ऽःनुई॥१॥

तथा

स्वख त द्रख क्या सना छुम म्ये बन्योमुत
छूवटऽरित स्वम्बऽरित बोजतम प्रभू।
च़्यऽई सऽऽत्य् समागम स्वख छुम आसान
छ्यनऽः गछऽः च़्ये निश द्रख ती छुम्॥१॥

हिन्दी

सुन सुन मालिक सुख दुख मेरा
कम से कम शब्दों में सारा
सुख है मुझको संग तुम्हारा
बिछड़ूं तुम से बनूं दुखियारा॥१॥

अन्तरप्यतितरामणीयसी
या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे।
तामपीश परिमृज्य सर्वतः
स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय॥२॥

अन्द्रय-अन्दर छिम स्यठा अऽऽविल ज़ऽऽविल
मल त्र्येः अज्ञानऽक्य्, खटान चोनु स्वरूप
थ्वद तुलित तिम प्रथ पासऽः ही प्रभू
न्यर्मल स्वरूप पनुन हावतम नाथ॥२॥

तथा

अन्द्रऽः म्येः क्रहन्यर ज़ऽऽव्युल परदऽः
तुह्य परज़ऽःनावनस ठ्वर रोजान
सुतिः जल सोरुई थ्वद तुलिथ न्यर्मल
स्वरूप पनऽःनुई प्रज़ऽलाव भगवन॥२॥

हिन्दी

बहु सूक्षम हैं अन्दर मेरे
जो मल काले तुमको छुपाते
हे प्रभू दूर वह कर के सारे
निर्मल अपना स्वरूप दिखा दे॥२॥

तावके वपुषि विश्वनिर्भरे
चित्सुधारसमये निरत्यये।
तिष्ठतः सततमर्चतः प्रभुं
जीवितं मृतमथान्यदस्तु मे॥३॥

नाशऽःहीन ज़गतरूप पूर्ण स्वरूप चोन
चिदानन्दऽः अमृतऽः रसऽः भरिथई
तऽथ्य् मंज़ रूज़ित पूज़ऽः हऽऽत लगातार
ज़िन्दऽःआसऽः म्वर्दऽः या केञ्ह ति बनिथऽई॥३॥

जगत से पूर्ण तुम्हारा यह स्वरूप
अविनाशी और चितानन्द रूप
हर दम इसी में पूजूं तुमको
ज़िन्दा हूँ मुर्दा या ओर कोई रूप॥३॥

ईश्वरोऽहमहमेव रूपवान्
पण्डितोऽस्मि सुभगोऽस्मि कोऽपरः।
मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते
मानिता त्वदनुरागिणः परम्॥४॥

सामर्थ वान छुस बऽः पानऽः ईश्वर
आत्मऽः प्रकाशऽः सऽऽत्य छुस स्वन्दर

ज्ञानऽः प्राप्ती छ्यम छुस बऽः ब्वड पण्डित
चिदानन्दऽः अमृत च्यथ भाग्यवान
अमि ख्वतऽः क्याः वनऽः क्याः छुम म्येः बजर
म्येः ह्युव नऽः शूभिदार यति ब्यथि काञ्ह
स्वात्मऽः अभिमानऽच्य् इछ हिश भावना
शूभान तऽस्य् करिन, यस चोन राग॥४॥

मैं ऐश्वर्यवान अत्यन्त सुन्दर
भाग्यवान पण्डित बुहुत दुरन्धर
अभिमान यह उसी को साजे
अनुराग तेरा जिसके अन्दर॥४॥

देवदेव भवदद्वयामृता-
ख्यातिसंहरणलब्धजन्मना।
तद्यथास्थितपदार्थसंविदा
मां कुरुष्व चरणार्चनोचितम्॥५॥

दीवन हऽन्दि दीवऽः भ्यनऽरुक अज्ञान
गऽऽलित युस प्वज़ ज्ञान उपदान
सुइ सतरूपऽः ज्ञान दित म्येः वारऽः पऽऽठ्य्
चरनन पूज़ायिः लायक बनाव॥५॥

दीवन हऽन्दि दीवऽः बोज म्योन ज़ारऽः पार
चानि अभीदऽः अमृतुक ज्ञानः अभाव
सु अभाव गलनऽः सऽऽत्य इम छि उपदान
पदार्थन हऽन्द्य् स्वभाविक ज्ञान
सुई सहज़ ज्ञान दित म्येः दासस
चरनन पूज़ायि लायक बनाव॥५॥

सो हे देवताओं के देवता
आप के अभेद, अमृत का न होना
गलने से जो होता है पैदा
स्वभाविक अभेद ज्ञान, सब वस्तु का
वह ही ज्ञान, देकर मुझ को सदा
अपनी पूजा के आप लायक बना॥५॥

ध्यायते तदनु दृश्यते ततः
स्पृश्यते च परमेश्वरः स्वयम्।
यत्र पूजनमहोत्सवः स मे
सर्वदास्तु भवतोऽनुभावतः॥६॥

यथ उत्सवस प्यठ पानऽः बनिः ध्यान चोन
तती बनि दर्शुन तऽः सऽऽतिई मिलाप
पनऽनी दयायि हन्दिः प्रभावऽः सऽऽत्य द्वहऽः
पूजायि हुन्द सु ब्वड दोह दिम नाथ॥६॥

कुछ अचानक बने, ध्यान तुम्हारा
फिर बने दर्शन और मिलाप अपना
पूजा महोत्सव, ऐसा हे प्रभू
अनुगृह से अपने दे मुझे सर्वदा॥६॥

यद्यथास्थितपदार्थदर्शनं
युष्मदर्चनमहोत्सवश्च यः।
युग्ममेतदितरेतराश्रयं
भक्तिशालिषु सदा विजृम्भते॥७॥

जगतक्यन चीज़न हुन्द असऽल स्वरूप
(च़्यथ रूपस सऽऽत्य तिहुन्द कुन्यर)
अद्वयतऽः आनन्दऽः रूपऽः पूज़ायि हुन्द
(परमऽः आनन्द दिवऽःवुन ब्वड दोह)
द्वनऽःवय अकअकिस प्यठ छी अऽऽश्रित
शूभिदार भक्त अऽथ्य् मंज़ छि फ्वलान॥७॥

सोरुई केञ्छा आत्म रूप ज़ानुन
अद्वयतऽः आनन्द बऽड्य् पूजा
द्वनऽवय कुनी छी अऽऽश्रित अकअकिस
शूभिदार भक्त अऽथ्य् मंज़ छि फ्वलान॥७॥
(एक और ही अर्थ)
प्रथ कुनि चीज़ुक युथ छु त त्युथ ब्वथ
चानि पूजायि हुन्द ब्वड सुः दोह

द्रनऽवय अकअकिस पानऽः वऽऽन्य् अऽऽश्रित
शूभिदार भक्त अऽथ्य् मंज़ छि फ्वलान॥७॥

स्वभाविक स्वरूप हर चीज़ का अपना
महोत्सव प्रभू पूजा अर्चन का
एक दूसरे पर दोनूं हैं निर्भर
सच्चा भक्त इन में विकसित है सदा॥७॥

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं
युष्मदर्चनरसायनासवम्।
सर्वभावचषकेषु पूरिते-
ष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मदः॥८॥

प्रथ कुनि भावस गरऽःहऽऽ प्यालः
मस्ता भरऽहऽऽस पूज़ा चऽऽन्य्
अकि अकि इन्दर्यिय अऽऽसऽः सऽऽत्य् च्यई च्यई
मस्त ब रोजऽहऽऽ ही शिवनाथ॥८॥

हर एक पदार्थ बनावो प्याला
आप की पूजा आसव निराला
(सब) इन्द्रय मुख से पीकर सर्वदा
बन जाऊं, मैं मस्त मुतवाला॥८॥

अन्यवेद्यमणुमात्रमस्ति न
स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते।
यत्र नाथ भवतः पुरे स्थितिं
तत्र मे कुरु सदा तवार्चितुः॥९॥

यतिः नऽः केञ्ह ज़ानुन छु बकार
सोरुई केञ्ह स्वप्रकाश गाशदार
चिदानन्दऽः नऽऽव्य् चोन, शहरः शूभिदार
तऽत्य करऽहऽऽ चऽऽन्य, पूज़ा लगातार॥९॥

जहां कुछ और जानना ही न हो
सारा जगत स्वप्रकाशरूप हो
चिदानन्द रूप आप के उस नगर मे
पूजूं तुझे सदा, ऐसी दया करो॥९॥

दासधाम्नि विनियोजितोऽप्यहं
स्वेच्छयैव परमेश्वर त्वया।
दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः
पादसंवहनकर्मणापि वा॥१०॥

पनऽःनी मरज़ियिः सऽऽतिन पऽऽन्य् पानऽः
नोकरऽः सऽञ्ज्य् जाय, दिच़ऽःथम भगवानऽः
क्याः छुना म्येः दर्शनस लायक बुथ बानऽः
पादि कमलऽः सीवा, करऽः हऽऽ नाथ॥१०॥

दास की पदवी पर मुझ को लगाया
अपनी मरज़ी से मेरे भगवाना
क्या हूं ना पात्र तेरे दर्शन का
चरन दबाना काम करने का॥१०॥

शक्तिपातसमये विचारणं
प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।
अद्य मां प्रति किमागतं यतः
स्वप्रकाशनविधौ विलम्बसे॥११॥

शब्दार्थ

पजिःही सोचुन शक्तिपातऽः वक्तन
युस न ज़ाह छुक करान ही ईष
अज़ क्याः म्येः गोमय क्याः म्ये बनिथ आम
स्वप्रकाश करनस, करान च़ेर च़ऽः महीष॥११॥

तथा

अनुगृह समऽयिः सोच ज़ाञ्ह करुत नऽः
छा इः अथ लायक या छु नाबऽकार
वुन्य् क्या म्येः गोमय क्या करऽः क्वत गछऽः
दर्शुन दिनस छुक करान च़ेर ही नाथ॥११॥

भाव

मतलभ छु वनऽनुक सम्सारस मंज़
सऽऽरी लूक करान पनुन कारुबार

फटित मायायि मंज मायायि हुन्दुई
तुलान मज़ऽः, तऽथ्य् ह्यूव करान व्यवहार
शक्ति पात क्रथम अनुगृह क्रथम
मायायि मंजऽः क्रडथस, छुस शुकुरगुज़ार
यथ वतिः प्यठ बुऽन्य् अन्द वातऽःनावतम
स्वप्रकाश करतम दित, दर्शुन यकबार
भक्ती तऽः लोल छुम चोन म्येः गन्योमुत
अडवति मतऽः करनावतम प्रारऽः प्रार
स्वप्रकाश करित दर्शुन पुनुन दित म्येः
लय पानस करित करुम, जलजल पार

हिन्दी

अनुग्रह के समय गलती से भी
मेरी पात्रता को सोचा न स्वामी
मुझ पर प्रभु अब, क्या है आबनी
स्वप्रकाश होने में देर है लग रही॥११॥

तत्र तत्र विषये बहिर्विभा-
त्यन्तरे च परमेश्वरीयुतम्।
त्वां जगत्त्रितयनिर्भरं सदा
लोकयेय निजपाणिपूजितम्॥१२॥

अन्द्रऽः न्यब्रऽः भगवानऽः परमीश्वरी सान
प्रथ कुनि मंज़ छुक च़ऽई पानऽः भासऽमान
त्र्यनऽःवय ज़गत च़ऽई पूर्ण आसान
वछऽःहऽऽत म्यानि अथऽः, सदा पूज़नऽः इवान॥१२॥

तथा

अन्दर च़्यथ रूपस, न्यबर व्यषियन मंज़
शिव, शक्ती ह्यत, व्यास सऽऽरिसऽई मंज़
ज़गत छु पूर्ण, तऽथ्य् स्वरूपस मंज़
रोज़ऽःहऽऽ बऽः सर्वदा, चानि पूज़ायि मंज़॥१२॥

हिन्दी

अन्दर बाहर की शय, में, देखे गये
परा शक्ति का संग पाये हुए
तीन लोकों से पूर्ण आप को सदा
पावों पूजा गया अपने हाथ से शिवा॥१२॥

स्वामिसौधमभिसन्धिमात्रतो
निर्विबन्धमधिरुह्य सर्वदा।
स्यां प्रसादपरमामृतासवा-
पानकेलिपरिलब्धनिर्वृतिः॥१३॥

महलऽः खानस चऽऽनिस पनऽःनी मरज़ियिः
बे रोक ह्युर खसित सदा सर्वदा
अनुग्रहऽः चानिः परमऽः अमृतऽःमसऽः मस्त
गछित आनन्दऽः मय, गिन्दऽहऽऽ ही नाथ॥१३॥

जब चाहूं प्रभू मेरा तेरे घर
रुकावट के बिना अटारी पे चढ़कर
अनुग्रह मय उत्तम अमृत पी कर
सुख पाया हुवा हो हमेशा बसर॥१३॥

यत्समस्तसुभगार्थवस्तुषु
स्पर्शमात्रविधिना चमत्कृतिम्।
तां समर्पयति, तेन ते वपुः
पूजयन्त्यचलभक्तिशालिनः॥१४॥

स्वन्दर कान्ह चीज़ लगिथऽई यकदम
युस अलौक्यक आनन्दऽः स्वाद उपदान
पऽज़्य् भक्तऽय् तमी स्वादऽः, सऽऽत्य शूभिदार
चऽऽनिस स्वरूपस पूज़ान ही नाथ॥१४॥

हर सुन्दर शय के स्पर्श मात्र से
अनुभव में आने वाले मज़े से
भक्तशाली लोग हे मेरे प्रभू
पूजते तेरा रूप उसी सामग्री से॥१४॥

स्फारयस्यखिलमात्मना स्फुरन्
विश्वमामृशसि रूपमामृशन्।
यत्स्वयं निजरसेन घूर्णसे
तत्समुल्लसति भावमण्डलम्॥१५॥

ज़्यथरूपस मंज़ भासऽमान गछिथई
सोरुई ज़गत छुक ऊल्लऽःसावान
ज़्यथमय रूपुक चमत्कार करिथई (आनन्द तुलिथई)
सारिनई जगतन आनन्द दिवान (स्वाद दिवान)
पनऽःनिस चिदानन्दऽः रसऽःसई मंज़ अदऽः
आनन्दऽः सऽऽत्य छुक ग्रायिः मारान
त्यली छु इः पदार्थन हुन्द समूह
आनन्दऽः सऽऽतिन नच़निः लगान॥१५॥

खुद को खुद भासमान होकर हे प्रभू
जगत रूप खुद को खुद उठाते हो (खिलाते हो)
नज़ारऽः इसका देख आनन्द बनाकर
अपनी मस्ती में आप नाचते हो
तब आनन्द में यह भाव मण्डल
विश्व भी झूमता है नाचने को॥१५॥

योऽविकल्पमिदमर्थमण्डलं
पश्यतीश निखिलं भवद्वपुः।
स्वात्मपक्षपरिपूरिते जग-
त्यस्य नित्यसुखिनः कुतो भयम्॥१६॥

सऽऽरिसई ज़गऽतस युस काञ्ह भऽक्तया
निर्विकल्पतायि किन वछि ब्वथ चोन
यऽऽनी यमिस ज़न प्रथ कुनि च़ीज़ऽः मंज़ऽः
पनुन आत्मा प्रकाश प्रज़ऽलान चोन
स्वात्मऽः रूपऽः परिपूर्ण तस छू
पूर्ण ज़गत पनऽःनुई पान आसान लोन
सर्वदा सुखी तस शूभिदार भक्तस
ज़गऽतस मंज़ कतिः केन्ह खोफ आसऽःवोन॥१६॥

हे ईश जो इन सब चीज़ों को
निर्विकल्प जान कर स्वरूप जानता हो
([1]विकल्प जान कर भी स्वरूप जानता हो)
स्वस्वरूप पूर्ण आनन्दमय उस
भक्त को जगत में कब कोई डर हो

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ते
कालकूटमपि मे महामृतम्।
अप्युपात्तममृतं भवद्वपु-
र्भेदवृत्ति यदि रोचते न मे॥१७॥

चऽऽनिस हटिस कूनस मंज भगवन
ज़हरि हिलाहल छु भरिथई
पूर्ण अमृत छु सु म्येः लायक
च़्ये निश छु अभिन्न अऽऽसिथई
नतऽःज़न बनि म्ये कुनि वक्तन तिः
अमृतऽः न्वट च़्येः निश आसि भ्युन्न
छुनऽः टोठ म्येः सुः ज़ाहतिः बनऽवुन
हाज़त छुनऽः म्येः केन्ह तमिकुइ॥१७॥

छुटऽरित

ज़हर छु म्येः क्युत सु मधुर अमृत
च़्ये सऽऽत्य भ्युन्न अऽऽसित ख्वट
हलाहल हटिस मंज च़्येः सऽऽत्य मीलित
सुई म्यानि बापत छु अमृतऽः न्वट॥१७॥

ज़हर है मुझको मीठा अमृत
आप से दूर होने से कलंकित
हालाहल गले में आप से अभिन्न है
मेरे लिए प्रभू, वह ही है अमृत॥१७॥

---

१ आचार्य जी की व्याख्या

त्वत्प्रलापमयरक्तगीतिका-
नित्ययुक्तवदनोपशोभितः।
स्यामथापि भवदर्चनक्रिया-
प्रेयसीपरिगताशयः सदा॥१८॥

चान्यौ कथायौ तऽ तुतायौ सऽऽत्य्
अऽऽस्यतन मुऽख म्योन सदा शोभाइमान
पूज़ा क्रिया युसऽः च़्येः टऽऽठ छऽई
हृदयि वोल आसुन ग्वछुस बऽः भगवान॥१८॥

प्रेम भरे शब्दों से आप का गुणगान
करता यह मुख हो सदा शोभायमान
आप की प्यारी पूजा का काम
हृदय वाला हूं मैं हरदम भगवान॥१८॥

ईहितं न बत पारमेश्वरं
शक्यते गणयितुं तथा च मे।
दत्तमप्यमृतनिर्भरं वपुः
स्वं न पातुमनुमन्यते तथा॥१९॥

कोताः छु आश्चर, ही परमीश्वरऽः
तरीकऽः चऽऽन्य छिनऽः, ज़ाञ्ह फिकिर तरान
अमृतऽः भ्वर पनुन स्वरूप, म्येः दित तिः
पूरऽः पऽऽठ्य् हर विज़िः, छुकनऽः च्यनऽः दिवान॥१९॥

करतूतें अजब, आप की हैं यह
समझने की ताकत किसको है यह
देके अपना स्वरूप मेरे हाथ में प्रभू
मज़े से पीने देते नहीं यह॥१९॥

त्वामगाधमविकल्पमद्वयं
स्वं स्वरूपमखिलार्थघस्मरम्।
आविशन्नहमुमेश सर्वदा
पूजयेयमभिसंस्तुवीय च॥२०॥

ही म्यानि भगवानऽः ही जगत स्वामी
सऽऽरिसई छुक च़ऽः ग्रास करऽःवुन
अभीदरूप स्वात्मऽःस्वरूप निर्विकल्प च़ऽः
लीला अपरम पार हावऽःवुन
च़्यई मंज समावीश करिथ सर्वदा
रोज़ऽःहऽऽ च़्यऽई पूज़ा बऽः कुरऽवुन
ही उमानाथऽः दितऽः म्ये स्वः गत च़ऽः
सर्वदा परामर्श रोज़ऽः करऽवुन॥२०॥

सब का अपना ही आप निर्विकल्प हैं आप
खा कर भी भूखे अथाह गहरे आप
अभिन्न होकर, मैं आप के साथ
करुँ नित आपकी पूजा स्तुति आप॥२०॥

उपसंहार

ही ईश्वर स्वरूप ही उत्पलदीव
श्री अभिनवगुप्त सोमानन्द
त्वहि छिवऽः ग्वर सऽऽन्य् करितव कृपा म्येः
"दीन" छुस त्वही निशि दया मङ्गऽः वुन
थवितौ अथऽः म्येः प्यठ वारऽः पऽऽठिन
पज़ऽःरऽचि वतिः कऽरितौ म्येः पकऽवुन
आश छ्यम म्येः तुहऽञ्ज़ऽई गाश म्येः अनितौ
इः तुता छुस अरपन बऽः करऽःवुन
संग्रह तूत्र उत्पल दीवुन
क्षीमराज त ईश्वर स्वरूप परऽःवुन
कऽऽशुर अथ बन्यौ ग्वरऽः दयायि सऽऽत्य
अनपड "दीन" छुनऽः केन्ह करऽःवुन

जय गुरुदेव

जयस्तोत्रनाम चतुर्दशं स्तोत्रम्

चौदहवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

ॐ जयलक्ष्मीनिधानस्य निजस्य स्वामिनः पुरः।
जयोद्धोषणपीयूषरसमास्वादये क्षणम्॥१॥

मूक्षिलक्ष्मी हऽन्दि आगरऽः, आसरऽः
म्यानि मऽऽलिकऽः जय जयकार
चऽः वछऽथऽई जयकार ग्रऽज़्य रूप आनन्द
ख्यनऽः ख्यनऽः करऽः स्वाद जय जयकार॥१॥

जयैकरुद्रैकशिव महादेव महेश्वर।
पार्वतीप्रणयिञ्शर्व सर्वगीर्वाणपूर्वज॥२॥

ही कुनिः रुद्रऽः कुनी शिवनाथऽः
महादीवऽः महीश्वरऽः जय जयकार
सारिनई दीवन हऽन्दि ज़िठिः शर्वऽः
पारवती टाठिः जय जयकार॥२॥

जय त्रैलोक्यनाथैकलाञ्छनालिकलोचन।
जय पीतार्तलोकार्तिकालकूटाङ्ककन्धर॥३॥

त्र्यिलूकी हऽन्दि राजुक निशानऽः
ड्यकस प्यठ च़्येः, नेथऽराः, जय जयकार
दुखियन हुन्द दुऽख कालऽकूट ज़हर च्यथ
हटिस च़्येः निशानाः जय जयकार॥३॥

जय मूर्तत्रिशक्त्यात्मशितशूलोल्लसत्कर।
जयेच्छामात्रसिद्धार्थपूजार्हचरणाम्बुज॥४॥

शरीर धऽऽरी भगवानस, त्रशक्ती रूपस
तेज़ त्रशूल, अथस शूभ, जय जयकार
यच्छायि सऽऽती भऽक्तयन कामना पूर
पम्पोशि पाद पूज़नी जय जयकार॥४॥

जय शोभाशतस्यन्दिलोकोत्तरवपुर्धर।
जयैकजटिकाक्षीणगङ्गाकृत्यात्तभस्मक॥५॥

हतऽः बज़ऽः प्रकाशऽः ज़्चऽः छ़टऽः दार
अलौक्यक शरीरस जय जयकार
जटि रचिः मंज, गंगा रऽछ़ निशानऽः
भसमऽः डेकऽःदारस जय जयकार॥५॥

जय क्षीरोदपर्यस्तज्योत्स्नाच्छायानुलेपन।
जयेश्वराङ्गसङ्गोत्थरत्नकान्तःहिमण्डन॥६॥

क्षीरऽसागरऽः ज़्चन हऽन्ज़ छ़ाया
शरीरस च़्येः लीपन जय जयकार
स्पर्शऽः चानि क्यौ रत्नौ सऽऽत्य् शूभिदार
सरफ चोन गहऽना जय जयकार॥६॥

जयाक्षयैकशीतांशुकलासदृशसंश्रय।
जय गङ्गासदारब्धविश्वैश्वर्याभिषेचन॥७॥

नाशऽः रसि चन्द्रऽकला हऽन्दि आसरऽः
चन्द्रऽःशेखरऽः जय जयकार
ज़गत कल्यानऽः वेषऽः गंगायि सऽऽत्य् न्यथ
ग्वड च़्य लगान छुई जय जयकार॥७॥

जयाधराङ्गसंस्पर्शपावनीकृतगोकुल।
जय भक्तिमदाबद्धगोष्ठीनियतसन्निधे॥८॥

पादिस्पर्शऽः चानि श्रूच़ गऽइ गऽऽव-दांद
ही वृषभऽ वाहनऽः जयजयकार
भक्तऽः मण्डली मंज़ ज़रूर वातऽः वऽनिः
भक्तवत्सल आशऽतोशऽः जयजयकार॥८॥

जय स्वेच्छातपोवेशविप्रलम्भितबालिश।
जय गौरीपरिष्वङ्गयोग्यसौभाग्यभाजन॥९॥

पनऽःनी यच्छायि करान तप, मूर्खन दोखा,
जटिलऽः तपीश्वरऽः जयजयकार

भाग्यवान च़ऽइ गौरी आलिंगन लायक
गौरी शंकरऽः जयजयकार॥९॥

जय भक्तिरसार्द्रार्द्रभावोपायनलम्पट।
जय भक्तिमदोद्दामभक्तवाङ्नृत्ततोषित॥१०॥

भक्ति रसऽः भावना रटऽःनुक लूभ ़च्येः
ही भक्तवत्सल जयजयकार
भक्तिऽः मस्ती वनऽवुन, नचुनाः टोठ ़च्येः
तांडव प्रेमी जयजयकार॥१०॥

जय ब्रह्मादिदेवेशप्रभावप्रभवव्यय।
जयलोकेश्वरश्रेणीशिरोविधृतशासन॥११॥

ब्रह्मा विष्णू आद्यक, दीवःताहन
बजर दिवान, निवान च़ऽः जय जय कार
हुकऽमस लूकऽःपाल कलऽःदऽऽरित मानान
परमः ईश्वरऽः ़च्येः जय जयकार॥११॥

जय सर्वजगन्न्यस्तस्वमुद्राव्यक्तवैभव।
जयात्मदानपर्यन्तविश्वेश्वर महेश्वर॥१२॥

सऽऽरिसई ज़गऽतस, त्राविमऽच्छि मुहरि सऽऽत्य
प्रकृट चोनु बजरऽः जय जयकार
आत्मा ति दान करित, च़ऽः ज़गऽतुक ईश्वर
ही महीश्वरऽः ़च्येः, जय जयकार॥१२॥

जय त्रैलोक्यसर्गेच्छावसरासद्द्वितीयक।
जयैश्वर्यभरोद्वाहदेवीमात्रसहायक॥१३॥

त्रज़गत बनावनऽः, यच्छायि वक्तन
ब्यियि न काञ्ह सऽऽथी जय जयकार
ऐश्वर्यिः भोर तुलऽःनस, ़च्ये मदऽःतस
परा शक्ती यऽऽच्य् जय जयकार॥१३॥

जयाक्रमसमाक्रान्तसमस्तभुवनत्रय।
जयाविगीतमाबालगीयमानेश्वरध्वने॥१४॥

अक्रमय व्यापत च़ऽः, सऽऽरिसई जगऽतस
ही सर्वात्मा जय जयकार
मूरख ति सर्वदा ग्यवान गीत चऽऽनी
ईश्वर नाव ह्यथ जयजयकार॥१४॥

जयानुकम्पादिगुणानपेक्षसहजोन्नते।
जय भीष्ममहामृत्युघटनापूर्वभैरव॥१५॥

दया या ब्ययि केञ्ह, ग्वनौ वरऽऽई तिः
़च्येः पनऽःनुई बजिराः जयजयकार
खोफनाक महाकाल, ति च़ऽई गालान
अलौक्यक भैरवऽः जय जयकार॥१५॥

जय विश्वक्षयोच्चण्डक्रियानिष्परिपन्थिक।
जय श्रेयःशतगुणानुगनामानुकीर्तन॥१६॥

जगतनाश खोफनाक, कार निर्भय करान
ही विश्व हरता, जय जयकार
चोन नाव ह्यनऽः सऽऽत्य्, करोरऽबऽद कल्यान
पतऽः पतऽः लारान जय जयकार॥१६॥

जय हेलावितीर्णैतदमृताकरसागर।
जय विश्वक्षयाक्षेपिक्षणकोपाशुशुक्षणे॥१७॥

अमृतऽच्य खान, खीरऽः, सागर द्युतऽःथन
ल्वत पऽऽठ्य् भक्तस जयजयकार
अकि ख्यनऽः क्रूधऽःनार, नाश सम्सारस
खतरनाक अछ्य् चऽऽन्य् जय जयकार॥१७॥

जय मोहान्धकारान्धजीवलोकैकदीपक।
जय प्रसुप्तजगतीजागरूकाधिपूरुष॥१८॥

मूहऽःअन्धकार सऽऽत्य, अन्यन ज़ीवऽलूकन
च़ऽई योत गाशि च़ोण्ग जय जयकार
श्ववञ्ममतिस जगतस, मंज हुश्यार अख
ही महा पुरऽषऽः जय जयकार॥१८॥
(इस श्लोक को समझने के लिए शिवसूत्र के तीन सूत्रों की आवश्यकता है।)

ज्ञानं जाग्रत (१,८)

ज़ाग्रत गव ह्यस पूर्ण अहमुकुई
नतऽः मा जगतस मंज़ नच़ऽनुई
यूगी छुई हुश्यार अतिनस
अनुसन्धानस ह्यस कर ह्यस

स्वप्नो विकल्पाः (१,९)

स्वपनस द्वयुम नाव ज़ान च़ऽः विकल्प
ज़ाग्रऽच़ मंज सम्सऽऽर्य संकल्प
नतऽः मा न्यन्दरि मंज सेनिमा बस
अनुसन्धानस ह्यस कर ह्यस

अविवेको मायासौषुप्तम (१,१०)

सुषुप्ती छुनऽः केन्ह नाव न्यन्दरी
ज़ाग्रऽच़ हुन्द यलि ह्यस डली
मायायि हऽञ्ज़्य् छय इहऽऽय खसऽवस
अनुसंधानस ह्यस कर ह्यस

जय देहाद्रिकुञ्जान्तर्निकूजञ्जीवजीवक।
जय सन्मानसव्योमविलासिवरसारस॥१९॥

शरीरऽः ग्वफि मंज, म्वदुर म्वदुर बोलान
ज़ीवात्मा चकोर जयजयकार
भक्तन च़्यताकाशऽः, आनन्दऽः बुडऽवुन
उत्तम राज़ऽः हंसः जय जयकार॥१९॥

जय जाम्बूनदोदग्रधातूद्भवगिरीश्वर।
जय पापिषु निन्दोल्कापातनोत्पातचन्द्रमः॥२०॥

स्वनऽः भरित धातन, हुन्द खान गिरिराज
समीरपर्वत सऽऽमी जय जयकार
पऽऽपियन न्यन्दा रूप, त्रठ त्रावान प्यठ
खतरनाक च़न्द्रमः जय जयकार॥२०॥

जय कष्टतपःक्लिष्टमुनिदेवदुरासद।
जय सर्वदशारूढभक्तिमल्लोकलोकित॥२१॥

तप कष्ट दुऽख तुलित ति, मुनियन
दुर्लभ दर्शुन, जय जयकार
भक्तन पनऽःन्यन, प्रथ दशायि मंज़ न्वन
भक्तवत्सलऽः च़्येः, जय जयकार॥२१॥

जय स्वसम्पत्प्रसरपात्रीकृतनिजाश्रित।
जय प्रपन्नजनतालालनैकप्रयोजन॥२२॥

परमानन्दः सम्पदा, विकासुक बानऽः
भऽक्तच़न बऽऽगरान जय जयकार
शरनागतन लूकन, ल्वलःमतऽः लायः
करनुक ज़ोखः जय जयकार॥२२॥

जय सर्गस्थितिध्वंसकारणैकावदानक।
जय भक्तिमदालोललीलोत्पलमहोत्सव॥२३॥

जगत बनावुन, रछुन सम्हारुन
शूभऽःवुन कारः जय जयकार
च़्येः भक्ती मस्ती, टोठ व्यवहारः
उत्पलस चितानन्द जय जयकार॥२३॥

जय जय भाजन जय जितजन्म-
जरामरण जय जगज्ज्येष्ठ।
जय जय जय जय जय जय जय
जय जय जय जय जय जय त्रयक्ष॥२४॥

जयकारस बानऽः, च़्येः वरऽऽई छुनऽः काञ्ह
जय जयकार च़्येः जय जयकार
ज़्युन बुजर मरुण, त्र्यनऽः वय ज़ीनमऽत्य्
जय जय कार च़्येः जयजयकार
सऽऽरिस ज़गतस, आदि दीव ज़्युठ च़ऽई
जयजयकार च़्येः जयजयकार
हीत्रिनेत्रधऽऽरी ही ज़गत सऽऽमी
जयजयकार च़्येः जयजयकार॥२४॥

ॐ
ही ईश्वर स्वरूप स्यानि टाठि ग्वरऽःदीव
जयजयकार च़्येः जयजयकार
ही क्षेमराज जी ही उत्पल दीव
जयजयकार च़्येः जयजयकार
तुहऽञ्ज़ी दयायि सऽऽत्य "दीनन" प्वर इः
जयजयकार च़्येः जयजयकार
जयजयकारस ति जयजय कारई
जयजयकर च़्ये जयजयकार
पोहः गटऽः पछिः ईकादशी द्वह
ही मंगलराज़ऽः च़्येः जयजयकार
कल्यान करतऽः जल, ग्वरऽः दीवऽः "दीनस"
पज़ऽरुक ज्ञान दिस जय जयकार॥

भक्तिस्तोत्रनाम पञ्चदशं स्तोत्रम्

पंद्रहवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

भऽक्तचन हऽञ्ज़ परौ अऽस्य अज़ लीला
इमौ लभऽमऽच छि दया चऽऽनी
सऽऽत्य् सऽऽत्य भऽक्तचन छुक चऽः रोज़ान
पतऽः पतः तिमऽनई छुक पकऽऽनई
भक्त ओस ब्वड ह्यू श्री उत्पल दीव
शूभिदार स्तूत्र सु परऽऽनी
क्षीमराज ईश्वरस्वरूप ति बऽड्य छि भक्त
सारिनई बऽः ब्ययि ब्ययि छुस नमऽऽनी
तिहऽञ्ज़ी दयायि छुम अज़ म्येः उत्सव
भक्ती स्तूत्र छुस परऽऽनी
किथऽः पऽऽठ्य "दीन" तिहऽञ्द ऋण नखऽः वालिः
रऽच़ प्रीर्णा छिस तिम करऽऽनी।

त्रिमलक्षालिनो ग्रन्थाः सन्ति तत्पारगास्तथा।
योगिनः पण्डिताः स्वस्थास्त्वद्भक्ता एव तत्त्वतः॥१॥

मल त्र्यह गऽऽलमऽत्य ज़न छि केञ्चौ
केञ्चौ पार क्वर शास्त्रनई
यूगी छि कऽऽत्याः त पण्डित कऽऽत्याः
पज़िः स्वखऽः वुछिमय भक्त चऽऽनी॥१॥

टीका

मल त्र्येः गालऽवऽन्य् गई अभ्यऽऽसी
शास्त्र परऽःवऽन्य विद्यऽऽरथी
योगी अकिस अऽछ्य् टीञ्टि मंज
ज़गतस सृष्ट थ्यथ सम्हऽऽरी
पण्डित आसान तत्त्व ज्ञऽऽनी
द्वह त रात ईकता छाण्डऽऽनी
इम सऽऽरी यलि इकऽःवटऽः मिलऽःवोक
सुई पूर्ण शिवऽः भक्त, आसऽऽनी
मुऽक्तसर यति केन्ह करुन ज़ानुन आसिः
तिम छि अडवति दोरऽऽनी
भक्त दयि दयायि शक्तिपातऽः सऽऽतिन
करनः ज़ानऽनः वरऽऽई स्वात्मा, शिव, प्रावऽऽनी
सोरुइ जगत यकज़ा, अलग अलग तिः
तिमन पनुन आत्मा, शिव, आसऽऽनी
स्वख-द्वख, त्वत-तरुन, ट्युठ-मुधुर, ति तिमन
चिदानन्द ईकरस आसऽऽनी
इः बन्यौ तिः दयि करुण ज़ऽऽन्य् ज़ऽऽन्य् तिम
सर्वदा सर्वथा आनन्द तुलऽऽनी॥१॥

मायीयकालनियतिरागाद्याहारतर्पिताः।
चरन्ति सुखिनो नाथ भक्तिमन्तो जगत्तटे॥२॥

करित ग्रास मायिक कालस त नीती
रागस कला अविद्यायि तिम छी त्रस
रऽत्य तिम भक्ति ज़न ज़गतक्यन बठ्यन प्यठ
स्वखऽः सान सर्वदा फेरऽऽनी॥२॥

टीका

षठकुञ्चक माया गण्ड च़टित त्रऽऽवित
काञ्क्षाहीन यति रोज़ुन
यऽऽनी प्रथ रंगऽः त्रस गछित क्यथ
तमाशऽः जगतुक वछान रोज़ुन

टीका

षठकुञ्चक मायायि हऽन्दि गण्ड ष्येः
माया काल कला राग नीती अव्यद्या
ज़ीवात्मस जगतस मंज़ फाटवान।
शिव पान, मशरित, प्वष (ज़ीव) छु बनान।
मलन त्र्यन बडरऽऽवित म्वटरऽऽविथ
स्वात्मा शिव चूरिः रोज़ान।
इम भक्तिज़न इः सोरुई षठकुञ्चक
मल त्र्येः ह्यथ छू ग्रास करान।
इमन हऽञ्ज़ असलियत अनुभव करित
स्वात्मदीव शिव न्वन छु वछान
दीह प्राण पुर्यषटक शुन्य लरि धनः शरीर
शिव रूप "स" ज़ऽऽनिथ "औ" रूप त्र्येः शक्ती ज़ानान।
सुई अदऽः शिव शक्ती "आः" आः फ्वलान।
याऽऽनी स्वात्मा "सौः" अनुभव करित-
जगत समन्दरऽः मंजऽः ह्यूर खसित-
तमिक्यन बठ्यन प्यठई फेरान॥२॥

रुदन्तो वा हसन्तो वा त्वामुच्चैः प्रलपन्त्यमी।
भक्ताः स्तुतिपदोच्चारोपचाराः पृथगेव ते॥३॥

असान असान तिः वदान वदान ति
ज़ोरऽः ज़ोरऽः हर वक्तः च़्यइ नाद लायान
त्वता चऽऽनी करान, सीवा चऽऽनी करान
भऽक्तच् चऽऽन्य निरालय अजब आसान॥३॥

न विरक्तो न चापीशो मोक्षाकाङ्क्षी त्वदर्चकः।
भवेयमपि तूद्रिक्तभक्त्यासवरसोन्मदः॥४॥

ग्वछ़ऽसत नऽ पूज़ुन विरक्त भाव कांछान
न ऐश्वर्यिः छाङ्डान न मोक्षिभाव मंगान
अगाधभक्ती रूपऽः मस्तुक रस च्यथ
मुत्वालऽः च़्यई पथ रोज़ऽःहऽऽ नाथ[१]॥४॥

बाह्यं हृदय एवान्तरभिहृत्यैव योऽर्चति।
त्वामीश भक्तिपीयूषरसपूरैर्नमामि तम्॥५॥

युस रुत भक्ताः न्यबर्युम सोरुई
हृदयस अन्दरई श्वमऽरऽऽवित
समावीशऽः भक्ति अमृतऽः धारौ सऽऽत्यन
च़्यथ रूपऽः च़्येः पूज़ान, तऽस्य् नमऽः नाथ॥५॥

धर्माधर्मात्मनोरन्तःक्रिययोर्ज्ञानयोस्तथा।
सुखदुःखात्मनोर्भक्ताः किमप्यास्वादयन्त्यहो॥६॥

वाह चोन भक्ताः, धर्म, अधर्मऽः मंज़ऽः
जानऽः, नाकारऽः, ज्ञाणऽः, अज्ञानऽः, मंज़ऽः तिः
स्वखऽःद्वखऽः, तर्निः ततिः, प्रथ कुनिः जोरऽः मंज़ः
अनभव करान, परमानन्द नाथ॥६॥

चराचरपितः स्वामिन् अप्यन्धा अपि कुष्ठिनः।
शोभन्ते परमुद्दामभवद्भक्तिविभूषणाः॥७॥

ही चराचरऽःपिता ही म्यानि स्वामी
अऽन्य् या म्यऽञ्य् लद कोनऽः अऽऽस्य्तन
अन्मोल भक्ती गहऽनऽः समावीशऽः सऽऽत्य्
सारिवऽई ख्वतऽः छिः शूभिदार नाथ॥७॥

शिलोञ्छपिच्छकशिपुविच्छायाङ्गा अपि प्रभो।
भवद्भक्तिमहोष्माणो राजराजमपीशते॥८॥

पथर पेमऽत्य फऽल्य्, ख्यन तिमन अऽऽस्य्तन
कावऽः पखौ सऽऽत्य, बलितन तन

---

१. प.अ समावीशऽः मुत्वालऽः बनावतम भगवन
२. इस रहस्य को "पराप्रावेशिका" परात्रिंशिका परमार्थसार तन्त्रालोक में पढ़िये। *'दीन'*

ईत कमज़ोर मगर भक्ती वशनेरऽः किन
राजऽःराजस कुबेरस, करान मात नाथ॥८॥

सुधार्द्रायां भवद्भक्तौ लुठताप्यारुरुक्षुणा।
चेतसैव विभोऽर्चन्ति केचित्त्वामभितः स्थिताः॥९॥

ही विभो च्येः मंज़ पूरऽः लीन गऽऽमऽत्य्
भक्ति अमृतस मंज़ वारऽः फऽट्य्मऽत्य्
स्वात्म भावस मंज़ द्वर रोज़नऽः बापत
मनऽः सऽऽती पूज़ान रोज़ान नाथ॥९॥

रक्षणीयं वर्धनीयं बहुमान्यमिदं प्रभो।
संसारदुर्गतिहरं भवद्भक्तिमहाधनम्॥१०॥

भगवानऽः ब्वड धनऽः चानि भक्ती हुन्द
दुर्दशा सम्सारऽच्य् गालान।
रछनी त बडरावऽनी छि इः पूरऽः पऽऽठ्य
सारी ख्वतऽः छि आदरनी नाथ॥१०॥

नाथ ते भक्तजनता यद्यपि त्वयि रागिणी।
तथापीर्ष्यां विहायास्यास्तुष्टास्तु स्वामिनी सदा॥११॥

ही नाथऽः चऽऽन्य इः भक्तिजन्ता
लोलऽः हऽच्य् चऽऽनी आसऽऽनी
रशक नाराज़ऽगी त्रऽऽवित भवऽऽनी
सर्वदा अऽऽस्य्तनख, ख्वश रोज़ान नाथ॥११॥

भवद्भावः पुरो भावी प्राप्ते त्वद्भक्तिसम्भवे।
लब्धे दुग्धमहाकुम्भे हता दधनि गृध्नुता॥१२॥

ही शिवनाथः चानि भक्ती सम्भोगऽः
च़्यऽई सऽऽत्य ईकात्मा प्रावऽऽनी
श्वद्ध द्वदऽः नोट यलि कऽऽञ्सि अथि आव
सु छा च़्वक गुरुस छाञ्डान नाथ॥१२॥

किमियं न सिद्धिरतुला
किं वा मुख्यं न सौख्यमास्त्रवति।
भक्तिरुपचीयमाना
येयं शम्भोः सदातनी भवति॥१३॥

बडऽःरऽऽवमऽच़्य थज़ऽःरऽऽवमऽच़्य भक्ती चऽऽन्य्
सर्वदा सऽऽत्य् सऽऽत्य् रोज़ान, शिवनाथ
सुऽई भक्ती बडि-ख्वतऽः-बऽड्य् स्यद्धी छयना ?
परमानन्द आत्मस्वख, वरशावान नाथ॥१३॥

मनसि मलिने मदीये
मग्ना त्वद्भक्तिमणिलता कष्टम्।
न निजानपि तनुते तान्
अपौरुषेयान्स्वसम्पदुल्लासान्॥१४॥

क्याः गोम दयिः चऽऽन्य् भक्ती म्वक्तऽः माल
मलिनिस मनस म्यऽऽनिस नऽः ज़ोतऽऽनी
स्वभाविक पनुन परमानन्द दित म्येः
सम्पदा गाश ति नऽः हावान नाथ॥१४॥

भक्तिर्भगवति भवति
त्रिलोकनाथे ननूत्तमा सिद्धिः।
किन्त्वणिमादिकविरहात्
सैव न पूर्णेति चिन्ता मे॥१५॥

त्रयःलूकी नाथऽः च्येः भगवानऽःसऽञ्ज़
भक्ती छि पऽज़्य पऽऽठ्य् बऽड्य स्यद्धी
अष्ट स्यद्धी वरऽऽय छयनऽः पूर्ण इः
ती छिः म्येः चिन्ता रोज़ान नाथ॥१५॥

बाह्यतोऽन्तरपि चोत्कटोन्मिष-
त्त्यम्बकस्तवकसौरभाः शुभाः।
वासयन्त्यपि विरुद्धवासनान्
योगिनो निकटवासिनोऽखिलान्॥१६॥

शिवतुता रूप पोशऽ गन्दिच स्वघन्दी
इमन यूगियन अन्दर न्यबर आसान
क्रवासना दुरघन्दऽः दार हमसायन ति
तिम मुशकि अम्बर, बऽऽगरान नाथ॥१६॥

ज्योतिरस्ति कथयापि न किंचि-
द्विश्वमप्यतिसुषुप्तमशेषम्
यत्र नाथ शिवरात्रिपदेऽस्मिन्
नित्यमर्चयति भक्तजनस्त्वाम्॥१७॥

शब्दार्थ

यन्द्रेयिः ज्ञानऽः प्रकाशी यति नऽः
भीदऽः भावऽः सम्सार यति शुन्गिथई
तऽथ्य् शिवरात्री समवीशिः भूमिः मंज़
भऽक्तय् सर्वदा छी पूजान नाथ॥१७॥

टीका

भाव छु वनऽःनुक यति मनऽः सान इन्द्रेयिः
ज़ऽऽन्य हीन निर्विकल्प छि बनिथई
"योगः चित्तवृति निरोधः" यूगसूत्र
यूगियस आसि स्यद्ध गोमुतुई
यऽऽनी अऽछ्य वटनऽः वक्तऽक्य् पऽऽठिन
न्यबरिम कान्ह भास न आसऽऽनी
सुई गव भीद भाव श्वङ्गिथ रोजुन
मगर अहं विमर्श, ज़ाग्रत आसऽऽनी
मायिक न्यबर्युम ज़गत, गव भीद भाव
सु छुनऽः कुनि मनस मंज़ ति आसऽऽनी
शिवरात्री कल्यानऽः रूप रात्री
ह्यसऽः रूप हुश्यार, अनुभव आसऽऽनी
अऽथ्य् छि वनान निर्विकल्प समाध
यूगी अतीनस स्वात्मा शिव पूज़ऽऽनी॥१७॥

सत्त्वं सत्यगुणे शिवे भगवति स्फारीभवत्वर्चने
चूडायां विलसन्तु शङ्करपदप्रोद्यद्रजःसञ्चयाः।
रागादिस्मृतिवासनामपि समुच्छेत्तुं तमो जृम्भतां
शम्भो मे भवतात्त्वदात्मविलये त्रैगुण्यवर्गोऽथवा॥१८॥

सत्तू ग्वन फ्वलितन म्येः शिवऽः सऽञ्ज़,
शूभिदार पूज़ा करऽःनस ही शम्भू।
शंकरऽः चरनऽः गर्द रजूगुणऽः रूपऽः,
शेरि प्यठ म्येः प्रज़लितन ही विभू।
रागऽः द्वीशऽः वासना मूलऽः मुञ्ज़िः गालनस,
लगितन म्येः सुः शिवऽः ग्वन नाव यत तमू
इथय पऽऽठ्य् त्रग्वनऽःदार सोरुई सम्सार,
करितन म्येः लय च्यऽई मंज़, ही प्रभू॥१८॥

संसाराध्वा सुदूरः खरतरविविधव्याधिदग्धाङ्गयष्टिः
भोगा नैवोपभुक्ता यदपि सुखमभूज्जातु तन्नो चिराय।
इत्थं व्यर्थोऽस्मि जातः शशिधरचरणाक्रान्तिकान्तोत्तमाङ्ग-
स्त्वद्भक्तश्चेति तन्मे कुरु सपदि महासम्पदो दीर्घदीर्घाः॥१९

संसारऽच्य् वथ ज़ीठ क्रूठ म्येः वछऽःमय
रंगऽःरंगऽः बलायौ अंग अंग ददिमय।
रऽति कुनि भूगुक स्वाद ति नऽः क्रऽमय
स्वख अगर वुछऽःमय सु ति न सऽः पूशमय।
न्यशफल इथय पऽऽठ्य ज़न्माः म्ये गोमय
तवय शंकरऽः पादन तल कलऽः, थौवमय
ख्वरस तल र्वटऽथस, शक्तिपात क्रऽथम
तमि सऽऽत्य स्वरूप म्योन, आनन्दऽः फ्वलऽःमय।
रोजऽःहऽऽ बऽः सर्वदा दास चोन जलजल
सर्वसृष्ट पोशऽःवऽन्य संपत दिम लय॥१९॥

ही इश्वर स्वरूप आसय शर्ण बऽः
सोरुइ केन्ह म्येः निछावर क्रऽमय।
रछऽःतम म्येः सर्वदा मूड छुस दास चोन
व्वनुम प्वज़ आसरऽः चोनुई म्ये छुमय।
तमि मयि सऽऽति मस्त, रोज़ऽहऽऽ सर्वदा
चावतम भक्ती सरऽः मंज़ऽः असऽल मय।
मऽत्य् मऽत्य् मतिथई चऽऽन्य ग्वन ग्यवऽःहय
च़ऽई छुक म्येः स्वामी च़ऽई छुक म्येः दय।
उत्पल दीवऽःनि तऽः क्षीमराजनि पासऽः
दया च़ऽः करतऽः म्येः ती म्ये व्वनऽःमय।

दीन मङ्गऽ:वुन छुस बेछऽ:वुन बरस तल
दयायि क्वछि मंजऽ: दितऽ:, म्वछऽ:फ्वल मुङ्गऽ:मय।
जयजय छुस करान हुशियऽऽरी मंज़
श्वङ्गऽ:मुत तऽ: स्वप्नऽ:ह्वत, ती बऽ: करऽ:हय।
मशरब म्ये: कास्तम पनुन ह्यस थावतम
दयि म्यानि दितऽ: म्ये:, पूरऽ: पऽऽठ्य पनऽन्य् लय॥

पाशानुद्भेदनाम षोडशं स्तोत्रम्

सोलहवें स्तोत्र के आधार पर भावपुष्प

ही म्यानि भगवान चानि आसरऽ: बऽ:
ब्रोंहकुन कदम छुस पकऽ:नावान।
आश छ्यम म्ये: चऽऽनी, छुम क्या परवाय
सुऽई आशा म्ये: पकऽ:नावान नाथ॥१॥

लक्ष्मन जुवुन दास, तऽम्य् सऽञ्ज़ी दयायि
शुरऽऽहिम स्तोत्र परऽ:वुन छुस
जयजयकार करऽ: ब्ययि ग्वरऽ: दीवन
तिमऽ:नऽई बऽ: नमान ही शिवऽ:नाथ॥२॥

न किञ्चिदेव लोकानां भवदावरणं प्रति।
न किञ्चिदेव भक्तानां भवदावरणं प्रति॥१॥

खटिथ च़ऽ: थवऽनस, छुनऽ: क्या: लूकन।
खटिथ च़ऽ: न थवऽनस, क्या: छु भऽक्तयन॥१॥

तथा

खटिथ च़ऽ: थवऽनस, नऽ:छु क्या: लूकन।
खटिथ चऽ: थवऽनस नऽ:, छु क्या भक्तन॥१॥

टीका

कान्ह चीज़ छु नऽ: त्युथ युस नऽ: खटान छु:
चोन स्वरूप आम लूकन भगवन
कान्ह चीज़ छु नऽ: त्युथ युस न हावान छु:
स्वरूप चोन भक्तन यति ही नाथ॥१॥

अप्युपायक्रमप्राप्य: सङ्कुलोऽपि विशेषणै:।
भक्तिभाजां भवानात्मा सकृच्छुद्धोऽवभासते॥२॥

प्राप्त छुक च़ऽ: सपदान [1]उपायि क्रमऽ: सऽऽतिन
या ग्वन चऽऽन्य् कीर्तन, करनऽ: सऽऽत्य्
मगर भक्ति-ज़नऽ:नऽई च़्यथ रूपऽ: सऽऽमी
भासऽ:मान श्वद्धऽ:रूप, सर्वदा नाथ॥२॥

जयन्तोऽपि हसन्त्येते जिता अपि हसन्ति च।
भवद्भक्तिसुधापानमत्ता: केऽप्येव ये प्रभो॥३॥

ज़ीनतन ज़गत तिम रोज़ान असऽ:वऽन्य्
हऽऽरतन पान तान्य् तोति असऽ:वऽन्य
च़्यथ भक्ति अमृत मस्त गऽऽमऽत्य् छी
चऽऽन्य् इम टऽऽठ्य्, अलौक्यक नाथ॥३॥

टीका

ज़ेनुन तिहुन्द समऽऽज्य् मंज रोज़ुन
समावीशऽ: आनन्द पूरऽ: प्रावुन
हारुन व्यथानस मंज़ प्युन आसान
हर हालस मंज तिम, ख्वश छी नाथ॥३॥
ज़गऽतस मंज़ ति यस दया आसि
शक्तिपात यस पूरण भऽक्तिस
ज़ेनुन हारुण तस कुनुई आसान
"वोन्य क्या: गव" तस वऽऽनी नाथ॥३॥

तथा

---

१. उपाय क्रम, शस्त्रों में कहे गये तरीके

जीतकर भी वह हंसते हैं
जीते जाने पर भी हंसते हैं
हे प्रभू भक्ति अमृत पीने वाले
आप के मतवाले अजब होते हैं॥३॥

शुष्ककं मैव सिद्धेय मैव मुच्येय वापि तु।
स्वादिष्टपरकाष्ठाप्तत्वद्भक्तिरसनिर्भरः॥४॥

न गछ्यम स्वः स्यद्धी न स्वः म्वक्ती
भक्ती रसऽः हीन ख्वसऽः बदमज़ऽः
पराकाष्टायि प्यठ, स्वादिष्ट भक्ती
चानि भरिथऽई, बऽः रोज़ऽःहऽऽ नाथ॥४॥

यथैवाज्ञातपूर्वोऽयं भवद्भक्तिरसो मम।
घटितस्तद्वदीशान स एव परिपुष्यतु॥५॥

अऽऽसऽम न ज़ानई भक्ती सऽऽत्य ब्रोञ्ह
"किथऽः तान्य पऽऽठय्[१]" आयि पानय म्येः निश।
व्ऽन्य् छुसय मङ्गान भगऽवानऽः इथय पऽऽठ्य
बडितन, पूठ्य्तन, तऽ पूशतन, नाथ॥५॥

सत्येन भगवन्नान्यः प्रार्थनाप्रसरोऽस्ति मे।
केवलं स तथा कोऽपि भक्त्यावेशोऽस्तु मे सदा॥६॥

भगऽवानऽः वनय प्वज़, द्वयुम काञ्ह मग्ग च्येः
करनस नऽः फ्वर्सत, न केन्ह ज़रूरत
कीवल गऽछ्य् सर्वदा, आवट म्येः रोज़ऽन्य्
अलौक्यक समवीशऽः, भक्ती हऽञ्ज़ नाथ॥६॥

भक्तिक्षीवोऽपि कुप्येयं भवायानुशयीय च।
तथा हसेयं रुद्यां च रटेयं च शिवेत्यलम्॥७॥

भक्ती मसती मंज़ छिव्योमुत
समसार वछऽत्य्, करऽहऽऽ क्रूदः,
पश्चाताप, असुऽना त वदऽना
ब्ययिः, शिवः शिवऽः क्रकऽनाद ही नाथ॥७॥

विषमस्थोऽपि स्वस्थोऽपि रुदन्नपि हसन्नपि।
गम्भीरोऽपि विचित्तोऽपि भवेयं भक्तितः प्रभो॥८॥

सखती मंज़ आनन्दमय
वदनस मंज़ असऽवुन
गुबिरस मंज़ल्वत तय ओप
भक्ती ज़ोरऽः रोजऽः हऽऽ नाथ॥८॥

भक्तानां नास्ति संवेद्यं त्वदन्तर्यदि वा बहिः।
चिद्धर्मा यत्र न भवान्निर्विकल्पः स्थितः स्वयम्॥९॥

इः, निर्विकल्प ब्ययि चित्स्वभावऽः रूपऽः किन
चोनुई स्वरूप हाव्यक नऽः न्वन,
न्यब्रऽः या अन्द्रऽः, चऽः स्वात्मा-अनुभव
भक्तन छुनऽः तिः, केञ्ह ज़ानऽनी नाथ॥९॥

भक्ता निन्दानुकारेऽपि तवामृतकणैरिव।
हृष्यन्त्येवान्तराविद्धास्तीक्ष्णरोमाञ्चसूचिभिः॥१०॥

न्यन्दा चऽऽन्य् बोज़नऽः वक्तन, भक्तिज़न
न्यबऽर्य अमृत च्यथ ज़न शान्त रोजान
मगर अन्दऽरऽः अन्दर, सच़निः प्यत्यौ सऽऽत्म्
वऽऽलिञ्जि परिनच़र गछान छुक नाथ॥१०॥

दुःखापि वेदना भक्तिमतां भोगाय कल्पते।
येषां सुधार्द्रा सर्वैव संवित्तच्चन्द्रिकामयी॥११॥

इमन भक्ति ज़नन हऽञ्ज़ समव्यथ (बुद्धी)
चित चन्द्रिका (ह्यसऽः हुशयऽऽरी) अमृतऽः भरित
द्वखऽः रूपस मंज़ ति अकऽल तिमन
चिदानन्दऽः अमृतऽः भूग, दिवान नाथ॥११॥

यत्र तत्रोपरुद्धानां भक्तानां बहिरन्तरे।
निर्व्याजं त्वद्वपुःस्पर्शरसास्वादसुखं समम्॥१२॥

---

१. प.अ. तथा टीका "चानि दयायि सऽऽत्य"

यति तति यथ तथ दशायि मंज भगवन
चान्यन भऽक्तयन, स्वरूपऽः स्पर्शऽः चमत्कार
अन्द्रऽः न्यब्रऽः पूर्ण, स्वख तऽः शऽऽन्ती
समाध व्यथान, ह्युवुई, छु नाथ॥१२॥

तवेश भक्तेरर्चायां दैन्यांशं द्वयसंश्रयम्।
विलुप्यास्वादयन्त्येके वपुरच्छं सुधामयम्॥१३॥

पूज़ायि चानि मंज, भक्त त ईश्वर ज़ऽः
द्वयत अऽऽसित, दीनऽता बोज़नऽः ईवान
स्वः दीनता रछ़ ति गऽऽलित, बऽड्य् भक्ति ज़न
अमृतमय श्वद्ध स्वरूप अनुभव करान॥१३॥
साम्ब पंचाशिका का ११ श्लोक इसी द्वयत की प्रशंसा करता है।

तुतायि सऽऽत्य करथ प्रसन्न भगवानः च़ऽः इः तिः द्वयतन
म्ये थफ करऽमऽच़्य
अऽऽसित अविद्या अमी अविद्यायि, अविद्या
गऽऽलित छयेः ह्योचऽमऽच़
थूल सूक्षिम त पर त्र्यनऽवऽन्य् रूपन तुता करऽः
चान्यन बऽः ज़रूरी
आत्मविद्या ज़ानऽनुक उपाय इः अविद्या ज्ञऽऽनियौ
छयेः वनिमऽच़

भ्रान्तास्तीर्थदृशो भिन्ना भ्रान्तेरेव हि भिन्नता।
निष्प्रतिद्वन्द्वि वस्त्वेकं भक्तानां त्वं तु राजसे॥१४॥

दर्शनः शास्त्री भ्रमस मंज़ पेमऽत्य
तवय छि च़्येः निशऽः, छ्यनऽः गऽऽमऽत्य्
च्येः सऽऽत्य् भ्यन्नता भ्रमऽः सऽऽत्यन गछान्
भऽक्तयन न्वन तऽ कुन, च़ऽः प्रज़ऽलान नाथ॥१४॥

मानावमानरागादिनिष्पाकविमलं मनः।
यस्यासौ भक्तिमांल्लोकतुल्यशीलः कथं भवेत्॥१५॥

मान अपमान रागदीश वगऽऽरऽः गऽऽलित
यस इनसानस मन गव साफ
समावीश वऽऽलिस तस भक्तिमानस,
लूकन ह्युव किथऽः स्वभाव आसि नाथ॥१५॥

रागद्वेषान्धकारोऽपि येषां भक्तित्विषा जितः।
तेषां महीयसामग्रे कतमे ज्ञानशालिनः॥१६॥

रागऽः दीशऽः रूपुक अन्धकार ति इमौ
भक्ती तीज़ऽः सऽऽत्य् ज़्यून्मुत छू
तिमन महापुरषन ब्रोञ्ठऽः कनिः भगवन
ज्ञऽऽनी पुरुष वन्तऽः क्याः लयिः नाथ॥१६॥

यस्य भक्तिसुधास्नानपानादिविधिसाधनम्।
तस्य प्रारब्धमध्यान्तदशासूच्चैः सुखासिका॥१७॥

भक्ती अमृतऽः रस यस मनऽशस
च्वन त्रेश, श्रानस पोन्य् आसान
आद्य मंज़ अन्द प्रथ कारस मंज़ तस
परमानन्दऽः स्वख हावान नाथ॥१७॥

तथा

भक्ती अमृतऽः रस यस कऽऽञ्सि
प्रथ कुनिः कामि हुन्द साधन छू
अन्द मंज़ ग्वड तस प्रथ कुनि कारस
समावीशऽः आनन्ददा आसान नाथ॥१७॥

सार

प्रथ काञ्ह कारुबार युस काञ्ह इन्सान
लूकऽः ह्यतऽः कारऽः करि ही नाथ
अदऽः यत हालस मंज़ सुः आसिः
तऽथ्य् मंज़ आनन्द प्रावान नाथ॥१७॥

कीर्त्यश्चिन्तापदं मृग्यः पूज्यो येन त्वमेव तत्।
भवद्भक्तिमतां श्लाघ्या लोकयात्रा भवन्मयी॥१८॥

कीर्तनस छांडनस पुज़ायि ध्यानस
पनऽन्यन भक्तन यमि किन, विचार छुख चई

तवय तिहऽञ्ज़ जिन्दगी च़्यई मीलिथ
थ्यकऽःवऽन्य् शूभिदार आसान नाथ॥१८॥

मुक्तिसंज्ञा विपक्वाया भक्तेरेव त्वयि प्रभो।
तस्यामाद्यदशारूढा मुक्तकल्पा वयं ततः॥१९॥

पूरऽः प्वक्तऽः गऽऽमऽचि भक्ती चानि हुन्द
मुक्ती आसान भगवन नाव
तमिची ग्वडऽनिचिः दशायिः अऽस्य् वऽऽत्यमऽत्य्
असि तिः मुऽक्तई मान ही नाथ॥१९॥

दुःखागमोऽपि भूयान्मे त्वद्भक्तिभरितात्मनः।
त्वत्पराची विभो मा भूदपि सौख्यपरम्परा॥२०॥

भक्ती चानि सऽऽत्य भरितिस आत्मस म्योः
इयितन कऽऽत्याह द्रख ह्यकन इथ
मगर भक्ती निशिः छ्यनऽः गऽऽमतिस पानस
सासऽः बऽद्य् स्वख नऽः बकार, म्योः नाथ॥२०॥

त्वं भक्त्या प्रीयसे भक्तिः प्रीते त्वयि च नाथ यत्।
तदन्योन्याश्रयं युक्तं यथा वेत्थ त्वमेव तत्॥२१॥

भक्ती सऽऽत्य छुक प्रसन्न च़ऽः गछान
प्रसन्न चऽः गछित भक्ती छि बनान
अकअकिम सहारऽः किथऽः कऽन्य् छी इम
इः सीर ति, च़ऽई योत ज़ानान नाथ॥२१॥

साकारो वा निराकारो वान्तर्वा बहिरेव वा।
भक्तिमत्तात्मनां नाथ सर्वथासि सुधामयः॥२२॥

साकारऽः रूपऽः किन या निराकारऽः किन
अऽन्दर्य् किन समऽऽज़ मंज या न्यबर्य दरबदर
भक्ती सऽऽत्य मस्त, हृदयि वऽऽलिस च़ऽः
प्रथ वति, अमृतऽः मय छुख नाथ॥२२॥

अस्मिन्नेव जगत्यन्तर्भवद्भक्तिमतः प्रति।
हर्षप्रकाशनफलमन्यदेव जगत्स्थितम्॥२३॥

द्रखऽः मय यऽथ्य् सम्सारस मंज़, भक्तन
चिदानन्दऽः हर्ष प्रकट आसान,
यम्युक फल प्रकाश-आनन्दऽः-घन
बदलय अजब ज़गथा नाथ॥२३॥

गुह्ये भक्तिः परे भक्तिर्भक्तिर्विश्वमहेश्वरे।
त्वयि शम्भौ शिवे देव भक्तिर्नाम किमप्यहो॥२४॥

खटिथ छुख रूज़िथ थदि ख्वतऽः थ्वद छुक
ज़गऽःतुक महीश्वर कल्यणऽः स्वरूप
ही शिवऽः रंगऽः रंगऽः चऽऽन्य् इः भक्ती
ज़गऽःतस मंज़ क्याः ताम अलौक्यक नाथ॥२४॥

भक्तिर्भक्तिः परे भक्तिर्भक्तिर्नाम समुत्कटा।
तारं विरौमि यत्तीव्रा भक्तिर्मेऽस्तु परं त्वयि॥२५॥

ही परिपूर्णऽः बडि ज़ोरऽः ज़ोरऽः बऽः
क्रकऽः कऽर्य् कऽर्य् मंगान ज़ोरदार भक्ती
धाराधार पूर्ण चऽऽन्य् भक्ती
भक्ती भक्ती भक्ती नाथ॥२५॥

यतोऽसि सर्वशोभानां प्रसवावनिरीश तत्।
त्वयि लग्नमनर्घं स्याद्रत्नं वां यदि वा तृणम्॥२६॥

शब्दार्थ

ही ईशऽः सारिनऽई शूभायन हुन्द
मोलमऽऽज च़ऽई छुक पानऽः भगवान
अऽऽस्यतन रत्न या घासऽः कऽट अऽऽस्यतन
च़्येः लगिथ थ्वद म्वल प्रावान नाथ॥२६॥

भावार्थ

ही ईशऽः पूर्ण च़्यथप्रकाशस
ज़ाथान च़ऽई छुक पानऽः भगवान
भगत रुत रत्न ह्यू या नीच़ घासऽः कऽट
च़्ये लगित थ्वद म्वल प्रावान नाथ॥२६॥

आवेदकादा च वेद्याद्येषां संवेदनाध्वनि।
भवता न वियोगोऽस्ति ते जयन्ति भवज्जुषः॥२७॥

यथ ज़ाणऽः वति प्यठ, ज़ानन बालिः प्यठऽः
ज़ऽऽन्यमतिस तामत, यस भक्ति ज़नस
च़्येः निश छुनऽः छ्यन, ज़ाञ्हः तिः आसान
तऽस्य् चऽऽनिस टऽऽठिस, नमस्कार नाथ॥२७॥

संसारसदसो बाह्ये कैश्चित्त्वं परिरभ्यसे।
स्वामिन्परैस्तु तत्रैव ताम्यद्भिस्त्यक्तयन्त्रणैः॥२८॥

संसारऽः सभायि न्यबर केञ्ह यूगी
निमीलन करिथ चऽऽन्य् ईकता प्रावान
लोलऽः मऽत्य् भक्तिज़न सम्सारसई मंज़
स्वखऽः म्वखऽः छी च़्ये रटान ही नाथ॥२८॥

टीका

सम्सारस मंज ज़ाग्रत स्वपुन तय
स्वषफती हऽञ्ज़ छि दशायि च़्येः
तिमौ निशि न्यबर छि तुर्या अवस्था
योगी अऽछ्य् वटिथ तऽत्य् वछान नाथ
लोलऽः मऽत्य् भगत भगवानऽः चऽऽनी
तिम लीला ज़गऽतऽच्य् वऽछ्य् वऽछी
प्रथ भावस मंज़ ध्यानऽः धारनायि रुस्तुई
च़्यई वछान रोज़ान सर्वदा नाथ॥२८॥

पानाशनप्रसाधन-
सम्भुक्तसमस्तविश्वया शिवया।
प्रलयोत्सवसरभसया
दृढमुपगूढं शिवं वन्दे॥२९॥

शब्दार्थ

ख्यनऽः चनऽः सजावनऽः, सऽऽतिन सऽऽरिसइ
ज़गऽःतस पालऽःवऽन्य, तऽः भूग करऽःवऽन्य,
प्रलयिः विज़िः असऽवनिः, पार्वती सऽऽतिन
प्रेमऽः ज़ोरऽः लऽगमतिस, शिवस जय नाथ॥२९॥

भावार्थ

सृष्ट थ्यत त संहार युसऽः ज़गतस करान
वछित सुई युस सुई पानऽः भूगान
प्रलयिः सातऽः व्यकासऽःदार शक्ती सऽऽत्य
ईकता प्रऽऽवमतिस शिवस, जयकार॥२९॥

टीका

सारी ज़गऽःतुक रत युस च्यवान
मामस अमि कुई युस छु ख्यवान
गहनः कनि अमिचय अऽडजि नऽऽल्य् छ़नान
जगऽतुक भूग करित, पानस लय करान
सम्हारऽः वकतन सऽऽरिसई ज़गतस
गालऽनऽच्य् खेलाः ज़ोरऽः खेलान
तऽस्य पराशक्ती पारवती सऽऽतिन
नालऽःमुत कऽर्मतिस शिवस, जयकार॥२९॥

परमेश्वरता जयत्यपूर्वा
तव विश्वेश यदीशितव्यशून्या।
अपरापि तथैव ते ययेदं
जगदाभाति यथा तथा न भाति॥३०॥

कऽऽञ्सि न अदीन अपूरौ ऐश्वर्यिः
चानिः बजि ईश्वरतायिः जय जयकार
इः ज़गत युथ आसान त्युथ न भासऽःनावान
यमि सऽऽत्य तथ मायायि ति, जयकार नाथ॥३०॥

करान छुस सर्वदा प्रणाम गुरऽःदीवन
करान छुस ज़ारऽः पारऽः सिरिफ ग्वरऽः दीवन
दियि तव म्येः भक्ती पनऽन्य तिछ म्ये दियितव
अथऽः प्यठ म्ये थवितव पानय नाथ॥

जय गुरुदेव

दिव्यक्रीडाबहुमाननाम सप्तदशं स्तोत्रम्

सतारवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

श्रीमान सतगुरुदेव भगवान
ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज
के चरण कमलों में
साष्टाङ्ग दण्डवत् पादि प्रणाम

"दीन"

पूज़ा कऽर अज़ तामत असि
भगवानस त तऽम्य सऽञ्ध्यन भक्तन हऽञ्ज्
पूज़ायि हुन्द ब्वड दोह छु अज़
करौ पूज़ा अऽस्य समिथ पूज़ा हऽञ्ज़्
ल्वब भगवान भक्तौ सिरिफ अकि पूज़ायि सऽऽत्य्
भक्ती गयि पूज़ा स्वः ति लबोन अऽस्य पूज़ायि सऽऽत्य्
छ्यनऽः केन्ह मऽऽमूली कथ आसान इः भगवानऽः
सऽञ्ज़ पूज़ा
प्रावान छि भऽक्तय इः पूज़ा भगवानऽ दयायिः सऽऽत्य्
पुज़ा गयिः स्वः यति दास त आगऽः (मऽऽलिक) कुनुई
सुई गव समावीश सुई भक्ती, स्वऽई मुक्ती प्रावान पूज़ायिः
सऽत्य्
बनान छु दास भगवानऽः सुन्द दास अकि पूज़ायि
सऽऽत्य्
तऽः भगवान तिः बनान दासऽः सुन्द दास पूज़ायि
सऽऽत्य्
"बस में होते आये भगवान भगत के" व्वनमत कऽम्य्
तान्य्
आसिहे तस पूरऽःखबर बनान इः गत पुज़ायि सऽऽत्य्
श्री उत्पलदेव क्षेमराज तऽ ईश्वर स्वरूप जी
करान छि पूज़ा तऽ बन्येय भगवान सिरिफ पूज़ायि
सऽऽत्य्

स्वम्बराव सामग्री इः ज़गत तऽः बनाव इः भगवान
पूज़ायिः सऽऽत्य्
कर अर्पन पुनन पान हा दीनऽः, बन भगवान तऽम्य्
सऽञ्ज़ी पूज़ायि सऽऽत्य्॥
दीन

अहो कोऽपि जयत्येष स्वादुः पूजामहोत्सवः।
यतोऽमृतरसास्वादमसृणयपि ददत्यलम्॥१॥

तत अलौक्यक आनन्दमय पूज़ा
उत्सवस अऽऽस्यतन जय जयकार
यति अउष ति पूर्ण आनन्दऽः रूपुक
अमृतऽः रसऽः चमत्कार दिवान नाथ॥१॥

व्यापाराः सिद्धिदाः सर्वे ये त्वत्पूजापुरःसराः।
भक्तानां त्वन्मयाः सर्वे स्वयं सिद्धय एव ते॥२॥

चानि पूज़ायिः खऽऽतरऽः करिमऽत्य् सऽऽरी
कर्म छि लूकन सिद्धिदा बनान
भऽक्त्यन, तिम, च्येः सऽऽत्य कुनी
आसनऽः किन, पानय सिद्धी नाथ॥२॥

सर्वदा सर्वभावेषु युगपत्सर्वरूपिणम्।
त्वामर्चयन्त्यविश्रान्तं ये ममैतेऽधिदेवताः॥३॥

यष्टऽः दीव छि तिमई म्यऽऽन्य् ही भगवन
सर्वदा प्रथ दशायिः मंज़ इम ज़न
लगातार इकऽःवटऽः सारिनई रूपन,
मंज़ वऽछय्-वऽछय् च्येः, पूज़ान नाथ॥३॥

ध्यानायासतिरस्कारसिद्धस्त्वत्स्पर्शनोत्सवः।
पूजाविधिरिति ख्यातो भक्तानां स सदास्तु मे॥४॥

ध्यान बेतरिः म्यहनतऽः वरऽऽयी युस ना
स्पर्शऽः चान्युक रुत समय स्यद्ध।
भऽक्त्य् तथ पूज़ा व्यद्ध मानान
स्वऽई गछ़ऽम सर्वदा रोज़ऽन्य् नाथ॥४॥

भक्तानां समतासारविषुवत्समयः सदा।
त्वद्भावरसपीयूषरसेनैषां सदार्चनम्॥५॥

दोह तऽ रात स्वुम आसुन सार यत
विश्ववत समय, भऽक्त्यन सु सर्वदा स्यद्ध।
भक्ति भावऽः अमृतऽः रसऽः सऽऽतिन तिमन
चऽऽन्य् पूज़ा प्रथ विज़ि आसान नाथ॥५॥

यस्यानारम्भपर्यन्तौ न च कालक्रमः प्रभो।
पूजात्मासौ क्रिया तस्याः कर्तारस्त्वज्जुषः परम्॥६॥

यथ नऽः ग्वड या अन्द आसऽऽनी
नऽः केन्ह वक्तुक हिसाव किताब
समावीशऽः पूज़ा छि तऽथ्य् वनान
भऽक्तय् चऽऽन्य सुऽई करान आसान नाथ॥६॥

टीका

शाहऽः खसऽः वस अऽऽसिथई आसान
छ्यनऽः वरऽऽई आसनऽः किन नऽः वक्तुक गण्ड।
अनुसन्धान ह्यसऽः रूप अमिचई पूज़ा
भऽक्त्य चऽऽनी स्वः ज़ानान नाथ॥६॥

यह वह ही दशा है जो भगवान ईश्वर स्वरूप इन शब्दों में कहते थे

ती म्येः करऽनाव यथ न आसि करुनुय केन्ह।
ती म्येः स्वरऽनाव यथ न आसि स्वरनुय केन्ह॥

ब्रह्मादीनामपीशास्ते ते च सौभाग्यभागिनः।
येषां स्वप्नेऽपि मोहेऽपि स्थितस्त्वत्पूजनोत्सवः॥७॥

इमन शुभिदार लूकन ज़ाग्रत अलावऽः
स्वपनस तऽ न्यन्दरि मंज़ ति, पूज़ा उत्सव मूजूद
समावीशऽःदार भाग्यवान भऽक्तच् तिम
ब्रह्मा तऽ सारिनई दीवन, हऽऽकिम नाथ॥७॥

जपतां जुह्वतां स्नातां ध्यायतां न च केवलम्।
भक्तानां भवदभ्यर्चामहो यावद्यदा तदा॥८॥

श्रानऽः ध्यानऽः ज़पऽः हवनऽः वक्तय योतन
छुनऽः चान्यन भक्तन पूज़ा उत्स्व व्याप्त
यलिः त्यलिः यतिः ततिः इथऽः तिथः प्रथ हालऽः
चऽऽन्य पूजा तिमन, आसान चलान ही नाथ॥८॥

भवत्पूजासुधास्वादसम्भोगसुखिनः सदा।
इन्द्रादीनामथ ब्रह्ममुख्यानामस्ति कः समः॥९॥

समावीशात्मक पूज़ा रूपी
अमृतऽः मज़ऽः स्वख, इमन सर्वदा व्याप्त
यन्दराज़ऽः ब्रह्मा, थद्यन थद्यन दीवन तिः
तिमन सऽऽत्य छ्येनऽः, बराबरी नाथ॥९॥

जगत्क्षोभैकजनके भवत्पूजामहोत्सवे।
यत्प्राप्यं प्राप्यते किंचिद्भक्ता एव विदन्ति तत्॥१०॥

भीदऽः रूप ज़गत, गालऽःनस, कुन कारण चऽः
तऽस्य, चानि पूजायि हन्दिः रतिः वक्तन
युस प्रावऽःनी स्वात्मऽः रूप परमानन्द लभान
तमिच ज़ान भऽक्तयन यऽऽच़ई नाथ॥१०॥

त्वद्धाम्नि चिन्मये स्थित्वा षट्त्रिंशत्तत्त्वकर्मभिः।
कायवाक्चित्तचेष्टाद्यैरर्चये त्वां सदा विभो॥११॥

चानि ह्यसऽः रूप प्रकाशिः स्वरूप,
जायि मंज़ बिहित, तनऽः मनऽः वऽऽनी किन
श्रयित्रह तत्वमय संकल्पौ सऽऽत्य
सर्वदा पूज़ऽःहऽऽथ ही म्यानिः नाथ॥११॥

भवत्पूजामयासङ्गसम्भोगसुखिनो मम।
प्रयातु कालः सकलोऽप्यनन्तोऽपीयदर्थये॥१२॥

बिन्ती छयम अकई ही भगवनऽः
चानि समावीशऽः पूजायि मंज ल्वगमुत
आनन्दऽः सऽऽत्य कयामतस तान्य्
स्वखऽः सान रोज़ऽः हऽऽ ही शिवऽनाथ॥१२॥

भवत्पूजामृतरसाभोगलम्पटता विभो।
विवर्धतामनुदिनं सदा च फलतां मम॥१३॥

चानिः पूज़ा हुन्द अमृतऽः रस
चनऽच्य् म्यऽऽन्य् तेज़ लालऽःसा
बडितन बडितन दोहऽदोहऽः बडितन
सदा सर्वदा फ्वलितन नाथ॥१३॥

जगद्विलयसञ्जातसुधैकरसनिर्भरे।
त्वदब्धौ त्वां महात्मानमर्चन्नासीय सर्वदा॥१४॥

भीदमय ज़गऽतकिः संहारऽः मंज़ऽः द्रामति,
अमृतऽःमय अद्वयतऽः रसऽः, सऽऽत्य भ्वरऽमुत,
च़्येः चिदानन्दऽः साग्रस मंज़ सर्वदा
च़्यई महात्मा सऽञ्ज़ पूजा, करऽहऽऽ नाथ॥१४॥

अशेषवासनाग्रन्थिविच्छेदसरलं सदा।
मनो निवेद्यते भक्तैः स्वादु पूजाविधौ तव॥१५॥

चऽऽन्य् पूज़ा करणऽः सऽऽत्य् भक्तिज़न
सऽऽरी वासऽनायि गण्ड च़टिथन
न्यशकपट न्यरमल स्वन्दर पनुन मन
सर्वदा च़्ये करान अर्पन नाथ॥१५॥

अधिष्ठायैव विषयानिमाः करणवृत्तयः।
भक्तानां प्रेषयन्ति त्वत्पूजार्थममृतासवम्॥१६॥

भक्ति ज़नन हँऽञ्ज़ऽः करणीश्वर्यि
व्यषय सीवन करान करानऽई,
च़्येथ धामस, चानि पूज़ायि बापत
अमृतऽःमय मय, सोज़ान नाथ॥१६॥

भक्तानां भक्तिसंवेगमहोष्मविवशात्मनाम्।
कोऽन्यो निर्वाणहेतुः स्यात्त्वत्पूजामृतमज्जनात्॥१७।

तेज़ तीव्रऽः लोलऽः नारऽः, वस तामत
दऽद्यमत्यन, भऽक्त्यन शान्ती दित, बलऽनस,
चानिः पूज़ा अमृतऽः सरस फटनऽः वरऽऽई,
कति छुः ब्ययि काञ्ह चारऽः ही नाथ॥१७॥

सततं त्वत्पदाभ्यर्चासुधापानमहोत्सवः।
त्वत्प्रसादैकसम्प्राप्तिहेतुर्मे नाथ कल्पताम्॥१८॥

चिदानन्दऽः प्रसाद प्रावनुक कुन उपाय
पादि कमलन चान्यन हऽञ्ज़ि पूज़ा हुन्द
अमृत चनुक शुभिदार उत्सव
अऽऽस्यूतन सर्वदा प्राप्त म्येः नाथ॥१८॥

अनुभूयासमीशान प्रतिकर्म क्षणात्क्षणम्।
भवत्पूजामृतापानमदास्वादमहामुदम्॥१९॥

अनभव ग्वछुस करुन बऽः, ईशानऽः,
ख्यनऽः ख्यनऽः प्रथ कुनि कारस मंज़
चानिः पूज़ा अमृत चनऽःचि मसती
भरित स्वाद, परमानन्द, ही नाथ॥१९॥

दृष्टार्थ एव भक्तानां भवत्पूजामहोद्यमः।
तदैव यदसम्भाव्यं सुखमास्वादयन्ति ते॥२०॥

चान्यन भऽक्त्यन चानि पूजा हऽन्ज्
सखऽरई फलदा बनान यकदम्
तमी सातन तिम दुर्लभ अलौक्यक
परमानन्दऽः स्वख प्रावान नाथ॥२०॥

यावन्न लब्धस्त्वत्पूजासुधास्वादमहोत्सवः।
तावन्नास्वादितो मन्ये लवोऽपि सुखसम्पदः॥२१

य्वत ताम लभऽःनय छुः रुत समयः
चोन पूज़ा अमृत स्वाद करऽनुक
ज़ोनुम त्वत ताम यथ ज़गऽतस मंज़
अख मुई स्वख संपदा छि वछिनय नाथ॥२१॥

भक्तानां विषयान्वेषाभासायासाद्विनैव सा।
अयत्नसिद्धं त्वद्धामस्थितिः पूजासु जायते॥२२

हंगऽः मंगऽः समावीशऽः पूज़ा सिद्धि
च़्यथ धासम मंज वारऽः रोज़ुन
सामग्री छाङ्डनकिः व्यच़ारऽः कष्टऽः
वरऽऽई, भक्तन स्यद्ध ही नाथ॥२२॥

न प्राप्यमस्ति भक्तानां नाप्येषामस्ति दुर्लभम्।
केवलं विचरन्त्येते भवत्पूजामदोन्मदाः॥२३॥

भक्तन चार्न्यन छुनऽः केन्ह प्रावनी
न छुः केन्ह प्रावुन तिमन दुऽरलभ
तिम छि चानि पूजायि हन्दि मस्ती, मस्त
फेरान निराकांक्ष मुतवालऽः नाथ॥२३॥

अहो भक्तिभरोदारचेतसां वरद त्वयि।
श्लाघ्यः पूजाविधिः कोऽपि यो न याञ्चाकलंकितः॥२४

वाह वाह वाह, ही वरदाता,
भक्ती च़रिरऽः सऽऽत्य, इमन उदारचित्त मन
पूज़ा रीती तिमन अलौक्यक थ्यकऽनी
मणगऽःनकिः ल्वचऽःरूक नऽः दागऽई नाथ॥२४

का न शोभा न को ह्लादः का समृद्धिर्न वापरा।
को वा न मोक्षः कोऽप्येष महादेवो यदर्च्यते॥२५॥

क्वसऽः शोभा या आनन्द छुनऽः ततिः
कमि रूपऽः सम्पदा नऽः ततिः व्यास
क्वसऽः हिश म्वक्ती छि छाण्डऽन्य् तति
यति स्वात्मऽःदीव शिव, इवान पूज़ऽनऽः नाथ॥२५॥

अन्तरुल्लसदच्छाच्छभक्तिपीयूषपोषितम्।
भवत्पूजोपयोगाय शरीरमिदमस्तु मे॥२६॥

संव्यथ भूमि मंज़ ज़ोतऽःवऽनि न्यरमल
भक्ती अमृतऽः रुउछमुत इः शरीर
चिदानन्दऽःघन च़्ये स्वात्मऽः दीवस
लगितन पूज़ायिः, गछ़ित लय ही नाथ॥२६॥

त्वत्पादपूजासम्भोगपरतन्त्रः सदा विभो।
भूयासं जगतामीश एकः स्वच्छन्दचेष्टितः॥२७॥

ही विभू ही त्रज़गत स्वऽऽमी
स्वतन्त्र व्यवहऽऽरियाः अऽऽसित ति बऽः
चानि चरणऽःकमलऽः पूज़ा आनन्द
लभऽःहऽऽ सर्वदा, बनिथ गुलामः नाथ॥२७॥

त्वद्ध्यानदर्शनस्पर्शतृषि केषामपि प्रभो।
जायते शीतलस्वादु भवत्पूजामहासरः॥२८॥

चानि ध्यानऽः दर्शनऽः, नालऽःमतिच लालऽसा
कृपापात्र भऽक्त्यन, पूर्ण, करनऽः बापत
संताप नाशक शीतल, आनन्ददा म्यूठ
चऽऽन्य् पूजा रूप, ब्वड सर वोपदान नाथ॥२८॥

यथा त्वमेव जगतः पूजासम्भोगभाजनम्।
तथेश भक्तिमानेव पूजासम्भोगभाजनम्॥२९॥

इथऽः पऽऽठ्य पूज़ा आनन्द रटऽनुक
रुत बानऽः च़्यई योत छुई आसान
तिथय पऽऽठ्य समावीशदार भक्तिस योत,
पूज़ा करन आनन्दऽः बानऽः ही नाथ॥२९॥

तथा

पूज़ा करनस लायक चऽई योत
ही म्यानि स्वऽऽमी जगतस मंज
करनुक बानऽः ति च़्यइ दितुमत पानऽः
म्येः टऽऽठिस भक्तस दीनस नाथ॥२९॥

कोऽप्यसौ जयति स्वामिन्भवत्पूजामहोत्सवः।
षट्त्रिंशतोऽपि तत्त्वानां क्षोभो यत्रोल्लसत्यलम्॥३०

चऽऽनिस अलौक्यक पूज़ा समयस
ब्ययि ब्ययि अऽऽस्य्तन जय जयकार
षयित्रऽःवय त्वत यति संवित अग्नस
मंज़ दज़ित फ्वलान ही नाथ॥३०॥

टीका

पूजा समय गव सु समय
यलि साधकस बनान साक्षात्कार
तमि वक्तन इः ज़गत, माया रूपऽः ज़ऽऽनिथ ति
शिवऽः रूपऽः फ्वलऽनस इवान ही नाथ॥३०॥

नमस्तेभ्यो विभो येषां भक्तिपीयूषवारिणा।
पूज्यान्येव भवन्ति त्वत्पूजोपकरणान्यपि॥३१॥

नम्सकार ही विभू तिमन भक्ति ज़नन
इमन चानि पूजा हऽञ्ज़ सामग्री
भक्ति अमृतऽः किः समावीशऽः रसऽः सऽऽत्य
चिदानन्दऽःदा पूंज़नी बनान ही नाथ॥३१॥

पूजारम्भे विभो ध्यात्वा मन्त्राधेयां त्वदात्मताम्।
स्वात्मन्येव परे भक्ता मान्ति हर्षेण न क्वचित्॥३२

पूज़ा शुरुः करऽःवुनुई बऽड्य् भक्त
मन्त्र स्यद्ध चानि स्वरूपुक ध्यान
करऽःवुनइ हर्षऽः सऽऽत्य पूर्ण मस्त तिम
जामन मंज़ न व्यच्चानई नाथ॥३२॥

राज्यलाभादिवोत्फुल्लैः कैश्चित्पूजामहोत्सवे।
सुधासवेन सकला जगती संविभज्यते॥३३॥

राजः लभऽःवुन फ्वलिमऽत्य् राज़ऽलूक
इथऽः कऽन्य् लूकन शराब बऽऽगरान
शिवऽः भाव प्रऽऽवित फ्वलिमऽत्य भक्तिज़न
ज़गऽतस आनन्दऽः अमृत बऽऽगरान॥३३॥

पूजामृतापानमयो येषां भोगः प्रतिक्षणम्।
किं देवा उत मुक्तास्ते किं वा केऽप्येव ते जनाः॥३४

छा तिम दीवता किनऽः जीवनम्वक्त
कोता अलौक्यक छी तिम भक्त
इमन पूज़ा अमृतऽः चमत्कार आनन्द
ख्यनऽः ख्यनऽः प्राप्त आसान नाथ॥३४॥

पूजोपकरणीभूतविश्वावेशेन गौरवम्।
अहो किमपि भक्तानां किमप्येव च लाघवम्॥३५

समावीशऽः शाली भक्तिज़नन
ज़गत ज़ानुन, पूज़ा सामग्री-ग्वब्यर, (तऽः)
सुऽई ज़ान, सारी भीदऽः प्रथा हुन्द नाश-ल्वच्चर
वाहवाह द्वनऽःवय अलौक्यक नाथ॥३५॥

पूजामयाक्षविक्षेपक्षोभादेवामृतोद्गमः।
भक्तानां क्षीरजलधिक्षोभादिव दिवौकसाम्॥३६

पूज़ामगन भऽक्तच्यन यन्द्रययि हरकत
व्यषियौ मंज़ऽई कडान अमृत
दीवताहन खीरसागर मन्दऽनऽः विज़िः
नागऽःराजऽः अऽछ्य् हरकतिः पऽऽठ्य नाथ॥३६॥

पूजां केचन मन्यन्ते धेनुं कामदुघामिव।
सुधाधाराधिकरसां धयन्त्यन्तर्मुखाः परे॥३७॥

कामनास्यद्धिदा द्वदऽः दार कामधीन
मानान, केञ्ह छी पूज़ा चऽऽन्य् ; (अगले समय)
आनन्दऽः अमृतऽः रसऽः तिः म्वधुर रस
अन्तर म्वख भक्त अऽथ्य् च्यवान नाथ॥३७॥ (तत्क्षण)

भक्तानामक्षविक्षेपोऽप्येष संसारसंमतः।
उपनीय किमप्यन्तः पुष्णात्यर्चामहोत्सवम्॥३८

सम्सारऽः रूपऽः किन ज़ोन्मुत कारुबार
यन्द्रयन हुन्द, थद्यन भक्ति ज़नन
अन्दऽरी कमितान्य् पूजायि हुन्द ब्वड
उत्सव दित करान पुष्टी नाथ॥३८॥

भक्तिक्षोभवशादीश स्वात्मभूतेऽर्चनं त्वयि।
चित्रं दैन्याय नोयावद्दीनतायाः परं फलम्॥३९॥

आश्चरयः छु ईश्वरऽः भक्ती प्रभावऽः सऽऽत्य्
कऽरमऽच़ स्वात्मऽः दीवऽः चऽऽन्य पूज़ा

मंगऽः मंग ल्वचऽरऽः खऽऽतरऽः न करित ति
मंगऽः मंग बेछुन गालान नाथ॥३९॥

टीका

ल्वचऽरुक छ्वचर गऽऽलित
दिवान दीनता (भक्ती) फल नाथ॥३९॥

उपचारपदं पूजा केषांचित्त्वत्पदाप्तये।
भक्तानां भवदैकात्म्यनिर्वृत्तिप्रसरस्तु सः॥४०॥

केञ्चन लूकन चऽऽन्य् पूज़ा प्रभू
चऽऽन्य पदवी प्रावनुक आसान उपाय
मगर स्वऽई भऽक्त्यन, च़्ये सऽऽत्य् ईकता
आनन्दुक फ्वलुन आसान नाथ॥४०॥

अप्यसम्बद्धरूपार्चा भक्तचुन्मादनिरर्गलैः।
वितन्यमाना लभते प्रतिष्ठां त्वयि कामपि॥४१॥

भक्ती मस्ती मंज़ ख्वसऽः पूज़ा
करनऽः इवान बेगण्ड पऽऽठ्य्
अक्रमऽः अऽऽसित ति स्वः च़्येः मंज़
पूरऽः परमानन्द प्रावान नाथ॥४१॥

स्वादुभक्तिरसास्वादस्तब्धीभूतमनश्च्युताम्।
शम्भो त्वमेव ललितः पूजानां किल भाजनम्॥४२

स्वात्मानन्दऽः म्वधुर भक्ती रसऽः स्वादऽः
तनमय मनऽः किन पूज़ायि लायक
ही शम्भू च़्यई योत पऽज़्य् पऽऽठ्य् पानय
चिदात्मा मनोहर बानः, आसान नाथ॥४२॥

परिपूर्णानि शुद्धानि भक्तिमन्ति स्थिराणि च।
भवत्पूजाविधौ नाथ साधनानि भवन्तु मे॥४३॥

ही शम्भू चऽऽन्य् पूज़ा करनऽः वक्तन
पूज़ा साधन इमऽः म्यानि इन्द्रययि
परिपूर्ण श्वद्ध, भक्ति भरित, अऽऽस्यतन
वासना हीन, प्वक्तऽः अऽऽस्यतन नाथ॥४३॥

टीका

समावीशऽः पूज़ायि वक्तन साधन
यन्द्रेयन करणीश्वर्यः बनान
अन्तर म्वख भावऽः वक्तन पूरण, श्वद्ध
लोलऽः हऽच़ऽः तऽः दरिः अऽऽस्यतन नाथ॥४३॥

अशेषपूजासत्कोशे त्वत्पूजाकर्मणि प्रभो।
अहो करणवृन्दस्य कापि लक्ष्मीर्विजृम्भते॥४४॥

सारिनऽई पूज़ायन ब्वड खज़ानऽः
गव समावीशऽः पूज़ायि हुन्द अनुशठान
च़्यथ प्रकाश किरणऽः मालन तथ मंज
अलौक्यक तीज़ऽः जितिनिः चमकान नाथ॥४४॥

एषा पेशलिमा नाथ तवैव किल दृश्यते।
विश्वेश्वरोऽपि भृत्यैर्यदर्च्यसे यश्च लभ्यसे॥४५॥

ही स्वामी ईच़ कोमलता त नरमी
पऽज़्य् पऽऽठ्य् वछनऽः इवान च़्यऽई मंज़
अऽऽसित सारी सम्सारूक मऽऽलिक
सीवकन अथि पूज़नऽः, लबनऽः इवान नाथ॥४५॥

सदा मूर्त्तादमूर्त्ताद्वा भावाद्यद्वाप्यभावता।
उत्थेयान्मे प्रशस्तस्य भवत्पूजामहोत्सवः॥४६॥

साकारऽः मंज़ऽः तिः निराकरऽः मंज़ऽः तिः
आसऽवनि मंज़ऽः नासऽवनि मंज़ऽः तिः
चानि पूजायिः हुन्द इः उत्तम ब्वड दोह
अऽऽस्यतन म्येः गाटऽलिस, प्राप्त ही नाथ॥४६॥

कामक्रोधाभिमानैस्त्वामुपहारीकृतैः सदा।
येऽर्चयन्ति नमस्तेभ्यस्तेषां तुष्टोऽसि तत्त्वतः॥४७

काम क्रूध अभिमानऽः पोशौ सऽऽत्य्
इम भक्त च़्येः कराण पूज़ा
यऽऽनी इम स्वभाविक दूश तान्य्
पूरऽः पऽऽठ्य् त्रावान, च्येः अर्पन करान

तिमऽःनई छुस बऽः प्रणाम करऽःवुन
तिमऽःनई पऽज़्य् पऽऽठ्य् प्रसन्न चऽः नाथ॥४७॥

जयत्येष भवद्भक्तिभाजां पूजाविधिः परः।
यस्तृणैः क्रियमाणोऽपि रत्नैरेवोपकल्पते॥४८॥

ही प्रभू भऽक्तचन हञ्जिः थज़िः पूज़ायिः
हञ्जिः रीती छुस करान जय जयकार
गासऽः तुज्यौ सऽऽत्य करनऽः इथ ख्वसऽः
रतनन हञ्दि म्वलऽः दिवान फल नाथ॥४८॥

ग्वरऽः दीवऽः म्यानि लगऽयो बऽः पऽऽरी
यऽऽरी कऽरथम पूरऽः पनऽःनी
पूज़ायि हुन्द इः सदऽऽहिम तूतऽर
परऽनोवनस बऽः दयायि सऽऽती

मन वऽऽनी म्येः स्वम्भरऽऽव सामग्री
तनऽः किस ठोकुर कुठिसई मंज़
ज़गत रूपस च्ये करऽःहऽऽय पूजा
परिथ पूथ्य् सम्व्यथ गाशश मंज़

ॐ श्री ईश्वरस्वरूपाय नमो नमः

अथ आविष्कारनाम अष्टादशं स्तोत्रं

अठारवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

जगतोऽन्तरतो भवन्तमाप्त्वा
पुनरेतद्भवतोऽन्तराल्लभन्ते।
जगदीश तवैव भक्तिभाजो
न हि तेषामिह दूरतोऽस्ति किञ्चित्॥१॥

ज़गऽःतऽकि स्वामी भक्तिज़न चऽऽनी
जगऽतऽः मंज़ऽः ग्वडऽन्यथ चऽः लभित क्यथ
अदऽः तथ च्येः मंज़ लभऽःवऽन्य् आसान
पऽज़्य् पऽऽठ्च तिमन निशि नऽः केञ्ह दूर नाथ॥१॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥गीता॥

क्वचिदेव भवान् क्वचिद्भवानी
सकलार्थक्रमगर्भिणी प्रधाना।
परमार्थपदे तु नैव देव्या
भवतो नापि जगत्त्रयस्य भेदः॥२॥

शब्दार्थ

ही शिवऽः नाथऽः कुनि छुक पानय प्रधान
कुनि सिलसिलऽः तरीकऽः दार मऽऽज्य् भगवती
बोज़ऽवय पज़र तऽः, च्येः या श्री शक्ती
या यथ त्रज़गऽतस नऽः भ्यनऽरई नाथ॥२॥

भावार्थ

विश्वतीर्न दशायि मंज़ गव शिव
विश्वमय दशायि मंज़ सुई शक्ती
द्वनऽवय मऽऽलिक ज़गऽतस आसान
असऽलस मंज़ नऽः त्रयनऽःवऽन्य, भ्यत्र नाथ॥२॥

नो जानते सुभगमप्यवलेपवन्तो
लोकाः प्रयत्नसुभगा निखिला हि भावाः।
चेतः पुनर्यदिदमुद्यतमप्यवैति
नैवात्मरूपमिह हा तदहो हतोऽस्मि॥३॥

वलिमऽत्य् व्यषियौ गुमण्डी नऽः ज़ानान
कुनि चीज़ुक ति चिदानन्दमय स्वरूप
यमि किन कूशिशव तऽः यत्नव सऽऽतिन
जाननऽः इवान प्रथ भावुक असली रूप

अगर व्वयञ कूशिश करऽवुन म्योन ह्रदय
आत्मऽः रूप ज़ानि नऽः त्यलिः हाय मूद
ज़ानुन आत्मा गयि सफल ज़िन्दऽःगी
नतऽः इन्सान ज़न कटऽः बस्तऽः नाथ॥३॥

भवन्मयस्वात्मनिवासलब्ध-
सम्पद्भराभ्यर्चितयुष्मदङ्घ्रिः।
न भोजनाच्छादनमप्यजस्र-
मपेक्षते यस्तमहं नतोऽस्मि॥४॥

चिदानन्दऽः स्वरूपऽः सऽऽत्य आसि परिपूर्ण
आत्मस पनऽःनिस मंज़ रोज़ऽःवुन
तमि सऽऽत्य भरपूर ऐश्वर्यिः लभ्नऽः किन
आसिः चऽऽन्य् चरणऽः कमल पूज़ऽःवुन
ख्युन या वलुन ति छुनऽः केञ्ह काञ्छान
मगर हर वक्तऽः चोन ध्यान करऽःवुन
तऽस्य् शूभऽःवऽनिसऽई करऽः हऽऽ बऽः सीवा
तऽस्य योत छुस करान प्रणाम् नाथ॥४॥

तथा

च़्ये रूपऽः पनऽःनिस आत्मस मंज़ई युस
रूज़ित, लभित भरपूर सम्पदा-
चान्यन चरणऽः कमलन हऽञ्ज़ पूज़ा
ख्युन वलुन मऽठिमतिस तऽस्य बऽः नमान॥४॥

सदा भवद्देहनिवासस्वस्थो-
ऽप्यन्तः परं दह्यत एष लोकः।
तवेच्छया तत्कुरु मे यथात्र
त्वदर्चनानन्दमयो भवेयम्॥५॥

रोज़ऽःवऽन्य् च़्यई मंज़ः सदा स्वस्थ इम लूक
चानी यच्छायि सऽऽत्य अन्दऽरी दज़ान
त्युथ करतऽः केञ्छा युथ यऽथ्य् ज़गि मंज़
पूज़ायि आनन्दऽः भ्वर, बनऽःहऽऽ नाथ॥५॥

टीका

इम सऽऽरी लूक चऽऽनिसई स्वरूपस
मंज़ रोज़नऽः किन स्वस्थ अऽऽसित तिः
पान खटऽः वऽनि चानी यच्छ़ायि किन
मलौ त द्रखौ सऽऽत्य् अन्दरय दज़ान
ही प्रभू यऽथ्य् सम्सारस मंज
पान न्वन हावनऽच्य् दया, यच्छ़ा कर
युथ सर्वदा चानि पूज़ायि मंज़ रूज़ित
चिदानन्दऽः पूज़ायि भ्वर बनऽः नाथ॥५॥

स्वरसोदितयुष्मदङ्घ्रिपद्म-
द्वयपूजामृतपानसक्तचित्तः।
सकलार्थचयेष्वहं भवेयम्
सुखसंस्पर्शनमात्रलोकयात्रः॥६॥

पऽऽन्य् पानऽः बनऽःवऽनि चानि चरणऽः जोरि हुन्द
पूज़ा अमृत च्यवऽःवुन ह्रदय म्योन बनितन,
सारिवई व्यवहारौ मंज इः लभितन
चित्तानन्दऽः रूपऽः स्वख योत लभितन॥६क॥

अदऽः तमि पूजायि हुन्द रुत अमृत
गरि गरि चनऽः वोल ह्रदय म्योन बनितन
यऽऽनी स्वभावऽः किन प्रथ वक्तऽः भगवन
ह्रदय म्योन च़्यई व्ययन पूज़ऽःवुन बनितन॥६ख॥

तमि पतऽः ज़गऽःतऽकि लेनदेन कारऽः मंजऽः
कीवल चिदानन्दऽः स्वख म्ये बनितन
ज़गऽःतुक लेनदेन कारुबार ह्युन ह्युन
म्येः क्युत चिदानन्दऽः अमृत बनितन
बनितन म्येः बनितन ही प्रभू बनितन
इहऽऽय रऽच्य् दशा म्येः हर वक्तऽः बनितन॥६॥

सकलव्यवहारगोचरे
स्फुटमन्तः स्फुरति त्वयि प्रभो।

उपयान्त्यपान्ति चानिशम्।
मम वस्तूनि विभान्तु सर्वदा॥७॥

सारिनई व्यवहारऽः चीज़न मंज़ प्रभू
स्वरूप चोन प्रज़ऽलान वऽछ वऽछ ही शम्भू
प्रथ कान्ह चीज़ उपदान त गलान जन
दोह तऽः रात करऽहऽऽ अनुभव ही नाथ॥७॥

टीका

यऽऽनी स्वरूपऽः परामरशस मंज़
पञ्च कृत लीला चऽऽनी हर समय
प्रथ कुनि हरकति मंज़ सदा सर्वदा
दयायि चानिः करऽःहऽऽ अनुभव नाथ॥७॥

सततमेव तवैव पुरेऽथवा-
प्यरहितो विचरेयमहं त्वया।
क्षणलवोऽप्यथमा स्म भवेत् स मे
न विजये ननु यत्र भवन्मयः॥८॥

भावार्थ

पनऽःनि घरिः शाक्तपद विश्वमय थवतम
थवतम विश्वतीर्न शाम्भव पदस प्यठ
च़्ये निश अभिन्न ज़ाह रोज़ऽऽहऽ न बिलकुल
अकि ख्यनऽः पानस दूर मऽः थवुम नाथ॥८॥

सार का सार

रक्त कऽऽली दशा विश्वमय रूप गव
बहु रूपस मंज वछुन शिव शाक्त पद
कालऽः थ्वद खसित महा भैरवघोरचन्ड काली
विश्वतीर्न शाम्भव पद सुई गव
बाहन कऽऽलियन हुन्द क्षेत्र शिवऽः घरऽः गव
अमि न्यबर ज़ाञ्ह मतऽः थवतम नाथ॥८॥

भवदङ्गपरिस्रवत्सुशीता-
मृतपूरैर्भरिते समन्ततोऽपि।

भवदर्चनसम्पदेह भक्ता-
स्तव संसारसरोऽन्तरे चरन्ति॥९॥

चानि पूज़ा सम्पदायिः शूभऽःवऽन्य् भक्ति ज़न
पराशक्ति चानि मंज़ऽः नेरऽवऽनि शीतल
अमृतऽः धारव, पूरऽः भरितिस यथ
सम्सारऽः सऽदऽरस सऽऽलाः करान नाथ

महामन्त्रतरुच्छायाशीतले त्वन्महावने।
निजात्मनि सदा नाथ वसेयं तव पूजकः॥१०॥

स्वात्म रूप चऽऽनिस बडिस वनस मंज़
भीदऽः रूप संताप गालऽःवनि शीतल
अहं परामर्शऽः कुलिचि छ़ायि तल
सर्वदा च़ऽई पूज़ऽवुन, रोज़ऽःहऽऽ नाथ॥१०॥

प्रतिवस्तु समस्तजीवतः
प्रतिभासि प्रतिभामयो यथा।
मम नाथ तथा पुरः प्रथां
व्रज नेत्रत्रयशूलशोभितः॥११॥

प्रथ कुनि चीज़ऽः मंज़ऽः सारिनऽई लूकन
न्वन पानऽः च़्यथ स्वरूपऽः, युथ च़ऽः प्रकटान
तिथय पऽऽठ्य म्येः दासस ब्रोण्ठऽः कनि तिः
त्रिन्येत्रः त्रिशूलेऽः दार शूभतऽः ही नाथ॥११॥

अभिमानचरूपहारतो
ममताभक्तिभरेण कल्पितात्।
परितोषगतः कदा भवान्
मम सर्वत्र भवेद् दृशः पदम्॥१२॥

लोलऽः भरित भक्तीरसऽः, इः अहंकार हुमित
परअहंता भावस, म्येः प्रसन्न च़ऽः गछ़ित
कर सरिनई अवस्थायन मंज़ तिः
म्यानिः अछय् दर्शुन च़ऽः बनख ही नाथ॥१२॥

निवसन्परमामृताब्धिमध्ये
भवदर्चाविधिमात्रमग्नचित्तः।
सकलं जनवृत्तमाचरेयं
रसयन्सर्वत एव किञ्चनापि॥१३॥

अक चऽऽन्य् पूज़ा इः म्योन मन करान
चिदानन्दऽः अमृतऽः सरस मंज़ रोज़ान
प्रथ कुनि मंज़ऽः अलौक्यक आनन्दः लभान
लूकऽःव्यवहार सोरुई करऽःहे नाथ॥१३॥

भवदीयमिहास्तु वस्तु तत्त्वं
विवरीतुं क इवात्र पात्रमर्थे।
इदमेव हि नामरूपचेष्टा-
द्यसमं ते हरते हरोऽस्मि यस्मात्॥१४॥

प्रथ काञ्ह चीज़ यति चोनुई स्वरूप छू
सीर इः ज़ानिः, कस ति ताकत छू
नाम रूप कार चोन, ज़ानुन कठ्युन छू
हरान छुक ब्वद्ध सऽऽन्य, हरऽः च़्येः नाव नाथ॥१४॥

यह श्लोक पढ़ते समय मस्ती में लिखे हुये
कुछ मेरे खयालाति परेशान

प्रथ काञ्ह चीज यति चोनुई स्वरूप छू
कस छु ताकत ती सीर त सार, ज़ानिःनाथ
कठिन प्रभावऽः वऽऽल्य नाम रूप कार चऽऽन्य
मन हरान म्योन, हर च्योन नाव, नाथ
ही प्रभू प्रथ काञ्ह चीज़ सम्सारुक
स्वरूप चोनुई छु ब्ययि कति इयिः केञ्ह
इहऽऽय कथ स्यद्ध या अस्यद्ध करिः हे
कऽऽञ्सि छुनऽः ताकत त्यूत ही शिवऽःनाथ
कुनि चीज़ऽच ज़ान इवान करनऽः
नाम रूप या तमिक ग्वन गंज़रऽऽवित
इम छि सऽऽरी च़्येः अलौक्यक त उलटऽः

इथुई गंजरावोक बुद्धऽई रावान नाथ
नाव चोन महीश्वर कस तरिः फिकिरिः
व्यराठ स्वरूप चोन ह्यकि कुस वछित नाथ
सृष्टी त संहार करुन च़्ये कार नाथ
ग्वन इथुई सोचोक, तिथुई नाथ हरान मन
हरऽः गव चूर ती च़्येः नाव नाथ
व्ययन अदऽः म्येः किच़ अकऽई वथ बाकी नाथ
च़्यऽई प्यमऽः परन च़्यई इमऽः शरन नाथ॥१४॥

शान्तये न सुखलिप्सुता मना-
ग्भक्तिसम्भृतमदेषु तैः प्रभोः।
मोक्षमार्गणफलापि नार्थना
स्मर्यते हृदयहारिणः पुरः॥१५॥

भक्ती चऽऽन्य् प्रऽऽवित युस मस्त छू
शऽऽन्ती स्वखऽः, शोक, तस अखरछ़ नः छू
ही हृदयिः चूरऽः च़्येः ब्रोञ्ठऽः कनि तस
म्वक्ती प्रावऽःनऽच्य् प्रारथना ति मशान नाथ॥१५॥

जागरेतरदशाथवा परा
यापि काचन मनागवस्थितेः।
भक्तिभाजनजनस्य साखिला
त्वत्सनाथमनसो महोत्सवः॥१६॥

ज़ाग्रत स्वपुन या न्यन्द्रिः मंज़ तिः अगर
दयि म्युल मनऽःदार, भक्तिस ज़ाञ्ह तिः
क्वसताम अलौक्यक अवस्था रछ़ बन्यस
त्र्यनऽःवय अवस्थायि ब्वड उत्सव छिस नाथ॥१६॥

आमनोऽक्षवलयस्य वृत्तयः
सर्वतः शिथिलवृत्तयोऽपि ताः।
त्वामवाप्य दृढदीर्घसंविदो
नाथ भक्तिधनसोष्मणां कथम्॥१७॥

मनऽः सान इमन इन्दरियन हुन्द स्वभाव
यूत चन्चल अऽऽसित तिः, च़्येः निश वऽऽतिथ

भक्ति धनऽः अमीर शूभिदार सन्तन मंज़
किथऽऽकऽन्य् ज्ञानऽःश्वर, दूर बनान ही नाथ॥१७॥

न च विभिन्नमसृज्यत किञ्चिद-
स्त्यथ सुखेतरदत्र न निर्मितम्।
अथ च दुःखि च भेदि च सर्वथा-
प्यसमविस्मयधाम नमोऽस्तु ते॥१८॥

बनोवुत नऽः काञ्ह चीज़, पानस निशिः अलग
स्वखऽः न्यबर ति बनोवुत, नऽः केन्ह ही भगवान
तोति सोरुई केञ्ह, दुख त दोद दिवऽःवुन
विलक्षन आश्चर छुख, च्येः जय जयकार नाथ॥१८॥

खरनिषेधखदामृतपूरणो-
च्छलितधौतविकल्पमलस्य मे।
दलितदुर्जयसंशयवैरिण-
स्त्वदवलोकनमस्तु निरन्तरम्॥१९॥

स्वरूपस खटऽःवऽन्य भीदऽःमय खय म्यऽऽन्य्
अमृतऽः सऽऽत्य् भरित, विकल्प म्यऽऽन्य् तिः छलित
दुशमन शकऽः बेमऽऽर्य गऽऽलित पिहित
दर्शुन ग्वछुम चोन विज़ि विज़ि आसुन नाथ॥१९॥

स्फुटमाविश मामथाविशेयं
सततं नाथ भवन्तमस्मि यस्मात्।
रभसेन वपुस्तवैव साक्षा-
त्परमासत्तिगतः समर्चयेयम्॥२०॥

नऽन्य् पऽऽठ्य् दयि करतऽः म्ये मंज़ समावीश
अदऽः करऽः बऽः तिः च्येः मंज़ (सदा) समावीश
युथ ज़न च्ये नऽज़दीक पूरऽ पऽऽठ्य वऽऽतिथ
प्रत्यक्ष स्वरूप ज़ाऽऽनिथ पूज़ऽःहऽऽथ नाथ॥२०॥

तथा

ही दयि ग्वडऽः म्येः नऽन्य् पऽऽठ्य् करतऽः थप
पतऽः बऽः ति सर्वदा पाद चऽऽन्य् रटऽःहऽऽ
पूरऽः नऽज़दीक वऽऽतिथ युथ लोलऽः सान
चोन साक्षात् स्वरूप पूरऽः पऽऽठ्य् पूजऽः नाथ॥२०क॥

थप त आवठ ग्वडऽः करतऽः म्येः पूरऽः पऽऽठ्य्
सर्वदा बऽः तिः च्यः अदऽः आवीश करऽःहऽऽय
युथ नऽज़दीक, वऽऽतिथ लोलऽःसान जल जल
साक्षात स्वरूप चोन पूरऽः पऽऽठय् पूज़ऽः नाथ॥२०ख॥

त्वयि न स्तुतिशक्तिरस्ति कस्या-
प्यथवास्त्येव यतोऽतिसुन्दरोऽसि।
सततं पुनरर्थितं ममैत-
द्यदविश्रान्ति विलोकयेयमीशम्॥२१॥

त्वता चऽऽन्य् करनुक कऽऽञ्सी न ताकत
सऽऽरी करान छी, छुक महा स्वन्दर
म्येः छि व्यन पथ कुन अक इः लालऽःसा
थकऽःरुउस दर्शुनः पूरऽःपऽऽठ्य् करऽः नाथ॥२१॥

उपसम्हार

ग्वरऽः दीवऽः व्यन दीन ब्ययि छुवऽः वनऽःवुन
पानस नऽज़दीक म्येः थवितव नाथ
नऽज़दीक वऽऽतित युथ मीलित गछऽःहऽऽ
खावि तुहन्ज़ि हऽन्जि, गरदिः सऽऽतिन नाथ॥

ड्वक छुम म्येः तुहुन्दई आसरऽः तुहुन्दई
यमि सऽऽत्य बे खोफ सम्सारऽः सरऽः मंजऽः
नदऽर्य व्यषय त्रऽऽवित, रटित पाद तुहन्दी
दयायि चानि भवऽःसरऽः अपोर तरऽः नाथ॥

मूर्ख अनपड मगर दास तुहुन्दुई
कारस बडिस यथ अथऽः लागान छुस
मिनत छ्यम तुहन्ज़ई वत छिवऽः हावान
तमिची ज़ित्नि सऽऽत्य गाश वछान "दीन" नाथ॥

ही उत्पलदीव ही क्षीमराज जी
साक्षात शिवऽःनाथ ईश्वर स्वरूप जी

दासस पनऽःनिस दीनस सनाथस
सम्सारऽः व्यवहार स्वरूप हाव ही नाथ॥
युथ ज़न ज़ोरऽः सान पाद तुहन्दी रटित
तुहऽज़ी कृपायि दर्शुन करऽः हऽऽ नाथ

अथ उद्योतनाभिधानाम
एकोनविंशं स्तोत्रम्

उन्नीसवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

श्रीमान सतुरुदेव भगवान ईश्वरस्वरूप
लक्ष्मन जू महाराज के चरण कमलों में
साष्टाङ्ग दण्डवत पादि प्रणाम
गुरुचरनों के दासों का दास *"दीन"*

प्रार्थनाभूमिकातीतविचित्रफलदायकः।
जयत्यपूर्ववृत्तान्तः शिवः सत्कल्पपादपः॥१॥

प्रार्थना अवस्थायि छुक दूर थ्वद स्यठाह
अलौक्यक फल दिवान पऽऽन्य् पानय
प्वज़ कल्पवृक्ष शिवऽनाथऽः छुख चऽई
अजब चऽऽन्य व्यवहार च्येः जयजयकार॥१॥

सर्ववस्तुनिचयैकनिधाना-
त्स्वात्मनस्त्वदखिलं किल लभ्यम्।
अस्य मे पुनरसौ निज आत्मा
न त्वमेव घटसे परमास्ताम्॥२॥

सारिनई चीज़न कुन छुक चऽः असलियत
स्वात्मऽः दीवऽः च्येः निश सोरुई सम्भव[१]

अऽऽसित म्योन आत्मा-म्यऽई छुक नऽः द्रेण्ठमान[१]
सोरइ ब्ययि थवतऽः लभऽः तापस नाथ॥२॥

ज्ञानकर्ममयचिद्वपुरात्मा
सर्वथैष परमेश्वर एव।
स्याद्वपुस्तु निखिलेषु पदार्थे-
ष्वेषु नाम न भवेत्किमुतान्यत्॥३॥

सऽऽरिसई प्रथ वति ज्ञान तऽ कृया रूप
चितस्वरूप परमीश्वरई आत्मा आसान
सार नय सुई आसि नाव ति नऽः मुमकिन्
ब्ययिः सोरुइ केञ्ह कतिः आसिः ही नाथ॥३॥

विषमार्तिमुषानेन फलेन त्वदृगात्मना।
अभिलीय पथा नाथ ममास्तु त्वन्मयी गतिः॥४।

भयन्कर सम्सारऽः द्वख दूर करऽःवुन
चानि साक्षात्कारुक इः मार्ग चोन
अऽथ्य् मंज़ गुछुस पूरऽः लीन सपदुन
फल प्रावऽः च्येः सऽऽत्य अभिन्न-गत ही नाथ॥४॥

भवदमलचरणाचिन्तारत्नलता-
लङ्कृता कदा सिद्धिः।
सिद्धजनमानसानां विस्मयजननी
घटेत मम भवतः॥५॥

ख्वसऽः स्यद्धी, थद्यन स्यद्ध यूगियन
अजब आश्चरयः, तुलान मंज़ हदयन
चानि न्यर्मल चरनऽः ध्यानऽः, थऽरिः सऽऽत्य
शूभऽःवऽन्य् कर बनि, म्यतिः ही शिवःनाथ॥५॥

कर्हि नाथ विमलं मुखबिम्बं
तावकं समवलोकयितास्मि।
यत्स्त्रवत्यमृतपूरमपूर्वं
यो निमज्जयति विश्वमशेषम्॥६॥

---

१. प्राप्त गछऽवुन

१. वछनऽःइवऽःवुन

अलौक्यक अमृतऽः धारऽः यत नेरान
भीदऽः रूप ज़गऽतस युस पूरऽः फाटऽवान
शाक्त स्वरूप, न्यर्मल म्वखऽः मण्डल चोन
कर करऽः, तमिकुई साक्षात्कार नाथ॥६॥

तथा

त्यूताः शूभिदार शाक्त-स्वरूप चोन
वरशावान च़्यथ आनन्दऽः अमृत
युस च्यथ भीदरूप सोरुई बनान अभीद
[1]कर सना तऽथ्य् मंज़ प्रावऽः जाय बऽः नाथ॥६॥

ध्यातमात्रमुदितं तव रूपं
कर्हि नाथ परमामृतपूरैः।
पूरयेत्त्वदविभेदविमोक्षा-
ख्यातिदूरविवराणि सदा मे॥७॥

शब्दार्थ

ध्यान करऽःवुनुई प्रकऽःटच्योमुत चोन स्वरूप
कर सना परमामृत धारौ सऽऽत्य्
आनन्दःरूप चोन रूप खटऽः वऽनि सनिः
खयि-खन्दक सदा पूरऽः, भर्यम नाथ॥७॥

भावार्थ

शाक्तोपायि क्रमऽः प्रकऽटच्योमुत चोन
स्वरूप कर सना च़्यत आनन्दऽः रूपऽः चोन
स्वात्मऽः शिवऽः रूप चूरिः थाववनिः इमऽः
कांक्षायि व्रच छ़नि गऽऽलित ही नाथ॥७॥

तथा

खन्दख यमि सम्सारचि कांक्षायिः
चूरि छ्यम थवान म्वखऽः कमल चोन
क्याः दितऽः सहज व्यचार, युथ जलजल
कांक्षा गऽऽलित, च़्येः मंज़ लय गछऽः नाथ॥७॥

१. प.अ. कर सना सुई स्वरूप बऽति प्रावऽः ही नाथ

त्वदीयानुत्तररसासङ्गसन्त्यक्तचापलम्।
नाद्यापि मे मनो नाथ कर्हि स्यादस्तु शीघ्रतः॥८

समावीशऽः आनन्द अनुत्तरऽः रस
चऽई चऽई च़्येः मीलित तिः, चन्चलता नऽः त्रावान
क्या सना इः मन म्योन ज़ाञ्ह इः त्राव्या
त्रावुन गुछ ईः व्ययन, जल जल ही नाथ॥८॥

तथा

चोन समावीशऽः स्वख यूत प्रऽऽवित ति
छुमनऽः मन चन्चलता वनिःतिः त्रावान
क्या गोम त्राविहे अथ व्ययन जलजल
(युथ बऽः च़्येः सऽऽत्य् हर वक्तऽः रोज़ऽः नाथ)॥८॥

मा शुष्ककटुकान्येव परं सर्वाणि सर्वदा।
तवोपहृत्य लब्धानि द्वन्द्वान्यप्यापतन्तु मे॥९॥

भीदऽः भाव हावऽःवऽन्य होख्य् त ट्चठ द्वन्ध
मतऽः ज़ाञ्ह अऽऽस्य्तन म्ये निशन वातान
मगर चऽऽन्य् प्राती यलिः तिम तिः लभन
रूज़तन सर्वदा म्यई निश त्यलिः नाथ॥९॥

तथा

अद्वयतऽः अमृतऽः रसऽः छऽर्य् इम द्वन्ध
होख्य् त ट्चठ गऽछय् नऽः इन म्ये निश ज़ाञ्ह
तिम तिः च़ऽः प्रऽऽवित यलिः ज़न म्वधरन
तिमई म्ये अमृत चऽऽवतन ही नाथ॥९॥

नाथ साम्मुख्यमायान्तु विशुद्धास्तव रश्मयः।
यावत्कायमनस्तापतमोभिः परिलुप्यताम्॥१०॥

युत ताम शरीरुक तऽ मनुक कष्टदा
अन्धकार पूरऽः पऽऽठ्य गछि नऽः नाश म्योन
चोन न्यर्मल स्वरूप अनुगृहऽः प्रकाश
ब्रोञ्ठऽः कनिः प्रजऽलतन त्वत तामत नाथ॥१०॥

तथा

युतताम मल म्यऽन्य सऽऽरी गलहऽऽन
त्वत ताम रूज़तोम ब्वथ हावान
युथ दीनऽः पनऽःन्यन क्वठ्यन प्यठ रूज़ित
दर्शुन तुहुन्दुई आसि करान॥१०॥

देव प्रसीद यावन्मे त्वन्मार्गपरिपन्थिकाः।
परमार्थमुषो वश्या भूयासुर्गुणतस्कराः॥११॥

चानिः वतिः प्यठ बुथिः छिम रूज़ित
च़्यथ ईकता लूटान, ग्वन त्रेह
युत ताम इम चूर बऽः कोबू करख
त्वत ताम प्रसन्न म्येः रोज़तम नाथ॥११॥

त्वद्भक्तिसुधासारै-
र्मानिसमापूर्यतां ममाशु विभो।
यावदिमा उह्यन्तां
निःशेषासारवासनाः प्लुत्वा॥१२॥

ही विभू म्योन इः मानसरोवर
चानिः भक्तिः अमृतऽः धारव
जल भरनऽः इयितन, युथ इम सऽऽरी
क्वासना काव जल वुडहऽऽन नाथ॥१२॥

मोक्षदशायां भक्ति-
स्त्वयि कुत इव मर्त्यधर्मिणोऽपि न सा।
राजति ततोऽनुरूपा-
मारोपय सिद्धिभूमिकामज माम्॥१३॥

मरनऽः स्वभावऽः दार असि मनऽशन निश
मूक्षिदा भक्ती चऽऽन्य्, किथऽः वातिः प्रज़लिः
ही स्वयमभू शम्भू क्या वातऽःनावत म्येः,
तमिची स्यद्धिदा भूमि प्यठ जल नाथ॥१३॥

सिद्धिलवलाभलुब्धं
मामवलेपेन मा विभो संस्थाः।
क्षामस्त्वद्भक्तिमुखे
प्रोल्लसदणिमादिपक्षतो मोक्षः॥१४॥

मतऽः मङ्गऽःनावतम अनिमाध्यक सिद्धियिः
अभिमानस अहंकारस छुस खोचान
भक्ती समावीशस मूक्षस मुकाबलऽः
बदल मूक्ष, कमज़ोर तऽः खाम आसान नाथ॥१४॥

दासस्य मे प्रसीदतु
भगवानेतावदेव ननु याचे।
दाता त्रिभुवननाथो
यस्य न तन्मादृशां दृशो विषयः॥१५॥

भगऽवानऽः पऽज़्य् पऽऽठ्य छुसय च़्येः बऽः मंगान
ही प्रभू ख्वश म्येः प्यठ आस रोजान,
ब्वऽद्ध म्यऽऽन्य् तस ताम छ्यनऽः केन्ह वातान
मूक्षि दातऽः युस त्र्यन लूकन हुन्द नाथ॥१५॥

तथा

दास छुस बऽः चोन रोज़तम म्येः ख्वश च़ऽः
भगऽवानऽः प्वज़ बोज तितुई छुसय बऽः मंगान
त्र्यन भवनन हुन्द नाथ युस दातऽः छू
म्येः हिविस ब्वज़ हुन्द व्यषय छुनऽः सुः नाथ॥१५॥

त्वद्वपुःस्मृतिसुधारसपूर्णे
मानसे तव पदाम्बुजयुग्मम्।
मामके विकसदस्तु सदैव
प्रस्रवन्मधु किमप्यतिलोकम्॥१६॥

स्वरूपऽः चिन्तन रसऽः भरपूर
मनस म्यऽऽनिस मंज़, चानि चरणऽः कमलऽच्य् ज़ूर्य
कमितान्य् अलौक्यक अमृतऽ सगऽः सऽऽत्य्
सर्वदा पूरऽः पऽऽठ्य फ्वलितन ही नाथ॥१६॥

भावार्थ

फ्वलऽःरावुन म्यानि मनऽः कुई भगवन
भीदऽभावऽः सन्कोच पूरऽः गालुन गव
पनऽः नुई चरणऽः कमल अति पूज़ऽनऽऽवित
भीद गऽऽलित चिदानन्द दिम ही नाथ॥१६॥

टीका

स्वरूपऽः चिन्तन-सोचुन, आत्मा क्या गव
ज्ञान त कृया-ज़ानुन अभ्यासस अनुन
अलौक्यक अमृत-कुस्ताम दयि अनुगृह
सर्वदा फ्वलऽःनावुम-समादि आनन्द नाथ॥१६॥

अस्ति मे प्रभुरसौ जनकोऽथ
त्र्यम्बकोऽथ जननी च भवानी।
न द्वितीय इह कोऽपि ममास्ती-
त्येव निर्वृततमो विचरेयम्॥१७॥

मोल छुम शंकर प्रभू त्र्यमबक नाथ
पराशक्त पार्वती भवऽऽनी मऽऽज म्यऽऽन्य्
ब्ययिः यथ ज़गतस छु नऽः काञ्ह ति म्योन
ईतिःसऽई मंज़, बेगम फेरऽःहऽऽ नाथ॥१७॥

टीका

त्र्यमबक नाथ त्र्यन शक्तियन मऽऽलिक गव
पराशक्ती तिमऽः नुई हुन्द समूह गव
सुई म्योन मोल मऽऽज्य सोई विश्व गव
म्योन आत्मा सुई श्वद्धऽः स्वरूप, ह्यस गव
म्येः अन्दर इः सोरुई जगत न्वन आसान
अऽऽसित नऽः अऽऽसित सोरुई भऽई भासान
भई छुस तऽः भई छुस सोरुई केन्ह छुस
अहं परामर्श ती दिम पूरऽः पऽऽठ्य् नाथ
भैरव स्वरूप गव इहोय युस बऽः छुस
शिव-शक्ती त नर यकज़ा युस बऽः छुस

उपसंहार

बसन्त पञ्चमी अज़ ब्वड दोह छु भगवन
श्रूकऽः पअऽञ्चम ति यऽथ्य् वनान भगवन
काक बुशन्डी अऽज़्य छू त्वरमुत
पूर्णऽः ज्ञान अऽज़्य तस बन्योमुत
ही उत्पलदीव क्षीमराज जी
ही ईश्वरस्वरूप श्री लक्ष्मन जी
नमसकार तुऽहि अज़ दीनऽः करऽःवुन
तुऽता अज बऽड, छू सुः परऽः वुन
करितोम दया अज़ बरितोम बानः
बानऽः कतिः पानऽः अनिः दियितोस पानऽः
दयायि हऽन्ज़ि कुछि मंज़ऽः दियितोस अक फ्वल
यमि सऽऽत्य् सुति गछि कृतःकृत्य् ही नाथ॥

चर्वणभिधानं विशं स्तोत्रम्

बीसवें स्तोत्र के आधार पर दीन के भाव

तरज़ कवाली

नचऽःनऽः वक्तऽः ज़ोतऽःवऽन्य् कलऽः माल शूभ तस।
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥ दीन॥

नाथं त्रिभुवननाथं भूतिसितं त्रिनयनं त्रिशूलधरम्।
उपवीतीकृतभोगिनमिन्दुकलाशेखरं वन्दे॥१॥

भस्मऽः सऽऽत्य् छऽऱ्‍ तन त्रभऽःवनः नाथस
त्रिशूल धऽऽरी दयस त्र्येः अछ्य् छस
योनि कनि नाग तय ज़ून शूभाह ड्यकस
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१॥

नौमि निजतनुविनिस्सरदंशुकपरिवेषधवलपरिधानम्।
विलसत्कपालमालाकल्पितनृत्तोत्सवाकल्पम्॥२॥

पनऽःनुई स्वरूप तस चमकान ज़ोतान
सुई सफेद ज़चऽः जामऽः वस्त्र नऽऽल्य्
नच़नऽः वक्तऽः ज़ोतऽःवऽन्य कलऽः माल नऽऽल्य तस
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥२॥

वन्दे तान् दैवतं येषां हरश्चेष्टा हरोचिताः।
हरैकप्रवणाः प्राणाः सदा सौभाग्यसद्मनाम्॥३॥

स्वभाग्य शऽऽली भऽक्तचन, यष्टऽः दीवः
महादीव, तऽ कांक्षा, तिमन सुई छाण्डुन
नऽम्य् नऽम्य तिमऽनई हरीहरः भक्तन
पनऽः निस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥३॥

तथा

स्वभावऽः शऽऽली इमन भक्ति ज़नन
यष्टऽःदीव महादीव छुः आसान
शोक सऽऽरी तिहिन्द तऽस्य् छान्डुन छुई
महादीवऽः भक्ती तिहुन्द ज़्व आसान
सर्वदा तिमऽःनई प्रणाम कऽर्य् कऽर्य्
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बेऽः प्रणाम॥३॥

क्रीडितं तव महेश्वरतायाः पृष्ठतोऽन्यदिदमेव यथैतत्।
इष्टमात्रघटितेष्ववदानेष्वात्मना परमुपायमुपैमि॥४॥

युस सारिनई हुन्द थ्वद ईश्वर छू
सुई द्वयुम लीला ति हावान
भक्तिस पानस सऽऽत्य मिलऽःच़ार दित
पऽऽञ्च़वय पनिन कार करनस, शक्ती दिवान
यच़्छायि सऽऽत्य् इः कऽऽम स्यद्ध करऽःवनिसई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम्॥४॥

तथा

महीश्वरतायि सऽऽती द्वयम खेला वछमस
ब्यड अदभुत कारऽः, यछायि सऽऽती
ईश्वरता पञ्चकरतृतता हवालऽः करऽःवनिस
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम्॥४॥

त्वद्धाम्नि विश्ववन्द्योऽस्मिन्नियति क्रीडने सति।
तव नाथ कियान् भूयान्नानन्दरससम्भवः॥५॥

इः सोरुई यऽम्य् सुऽन्द अक गिन्दुना छूः
आन्दऽः रस तस कूतः मजऽःदार छू
त्रिभवनऽः सऽऽतिन, पूज़िः लायकसई
पनऽनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम्॥५॥

कथं स सुभगो मा भूद्यो गौर्यां वल्लभो हरः।
हरोऽपि मा भूदथ किं गौर्याः परमवल्लभः॥६॥

गौरी हुन्द टोठ क्याज़ि आसि नऽः स्वन्दर
मनोहर शंकरस किथः नः टऽऽठ्य् शुभःकर
गौरी वल्लभ, मनऽः हर शिवसई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽ बऽः प्रणाम्॥६॥

तथा

युस पराशक्ती हुन्द आसि टोठ यूत
क्याजि आसि नऽः सु महास्वन्दर
[१]पराशक्ती मन चूरि निनऽः वऽऽलिसई
पनऽः निस सऽऽमियस करऽः बः प्रणाम्॥६॥

ध्यानामृतमयं यस्य स्वात्ममूलमनश्वरम्।
संविल्लतास्तथारूपास्तस्य कस्यापि सत्तरोः॥७॥

समावीशऽः कुलिस स्वात्मुक मूल छू
ध्यानऽः अमृतऽः भ्वर अविनऽऽशी
अलौक्यक ज्ञान रूपऽः लन्ज़ि तमिसई
तिथी ध्यानऽः अमृतऽः मय आसान
तऽस्य शिवनाथस, पान पुशऽरऽऽविथई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥७॥

तथा

यथ भक्ति कुलिस स्वात्मऽः रूपऽः मूल छू
शन्करऽः ध्यानऽः अमृतऽः सगऽः ध्वर
ब्ययि जगत रूपऽः लण्जि तमिचय अलौक्यक
तमी ध्यानऽः अमृतऽः मय आसान

---

१. प.अ. तऽस्य शक्तीयि टोट आसन वऽऽलिसई

मूल भक्ति कुलिस ध्यानऽः अमृतऽः सगुम
सम्व्यत लण्ज़ि म्येः द्रायि ध्यानऽः मय
लोलऽः पोश फ्वलऽःनम तऽः अदऽः वारऽः पऽऽठिन
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥७॥

भक्तिकण्डूसमुल्लासावसरे परमेश्वर।
महानिकषपाषाणस्थूणा पूजैव जायते॥८॥

भक्ति रूपऽः तछिन यलि छि तेज़ान
समावीशऽः पूजा रूप थम उपदान
(यऽऽनी भक्ती रूपऽः दयि लोलस दय
समावीशऽः रूपऽः फल यऽऽन्य् पानय दिवान)
तछिन गालनऽः खऽऽतरऽः थम दिनऽः वऽऽलिसइ
पनऽः निस सऽऽमियस करऽःबऽः प्रणाम॥८॥

सदा सृष्टिविनोदाय सदा स्थितिसुखासिने।
सदा त्रिभुवनाहारतृप्ताय स्वामिने नमः॥९॥

द्वहय करान सृष्टी व्वलऽःसनऽः इवान
तत रछित सर्वदा बिहान स्वखः सान
त्र्यजगत ख्यत तृप्त आसन वऽऽलिसई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥९॥

न क्वापि गत्वा हित्वापि न किंचिदिदमेव ये।
भव्यं त्वद्धाम पश्यन्ति भव्यास्तेभ्यो नमो नमः॥१०

इमौ शूभिदारौ कुन गछनऽः वरऽऽई
केन्ह करनऽः वरऽऽयी इः जगत सोरुइ
स्वरूप शूभऽःवुन ज़ोन तिमन नऽम्य् नमिथई
पनऽः निस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१०॥

तथा

वनवास गछुन या तीर्थन फेरुन
या कारुवारई वैराग करुन
छि कमजूरी मनऽच अमि सऽऽत्य् जल जल
मनुष छुनऽः आसान दयस वऽऽतिथ
सोरुइ इः सम्सार दयिसुन्द रूप छू
अमि निशि चलुन तस निश दूरुन छू
मरदी छि सोरुई केञ्छा कर्ऽच कर्ऽच
करन वऽऽल्य् सुन्द कार मानुन छू
कांक्षा यलि गलि शक दूर गछऽःनस
अद्वयतऽः प्रकाश अछिन फ्वल्यस
दयि करुन यलि द्वह रात पानय
करऽःवुन न करऽःवुन ज़ान रोज़्यस
द्वह तऽ रात शिव नाव ज़्यविः प्यठ आस्यस
पान पुशरोवमुत पूरऽः तऽस्य आस्यस
यम्य् सुन्द कारुबार ख्यन च्यन सोरुई
दयि लोलऽः अदऽःरयोमुत आस्यस
तऽम्य सुन्द व्यथान ति समावीश आसान
पूरऽः वैरऽऽगी सुई आसान
सुई गव भक्तिज़न नऽम्य् नऽम्य् तमिसऽई
पनऽऽनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१०॥

भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यदुपयाचितम्।
एतया वा दरिद्राणां किमन्यदुपयाचितम्॥११॥

इमन भक्तिलक्ष्मी हुन्द खजानाः चन्दस
तस क्याः केन्ह छु ब्ययि छाण्डन
युस अमि दौलतऽः दर्यदर आसि
तस क्या केन्ह छु ब्ययि छाण्डुन
भक्ति लक्ष्मी हऽन्ज़ पूज़ा करिथई
पनऽः निस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥११॥

दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते।
मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शाङ्करः॥१२॥

द्वखन यति बनान स्वख, ज़हरस अमृत
सम्सारऽई बनान मूखि साधन
शण्करऽः सऽण्ज़ि तऽथ्य् वति प्यठ पकिथई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१२॥

मूले मध्येऽवसाने च नास्ति दुःखं भवज्जुषाम्।
तथापि वयमीशान सीदामः कथमुच्यताम्॥१३॥

ग्वडऽः मंज़ऽः अन्दऽः कुनि थानस प्यठ ति
चान्यन टाठ्यन, न द्वख मुमकिन
असि क्याजि छु कष्ट, प्रछित ईशानस
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१३॥

ज्ञानयोगादिनान्येषामप्यपेक्षितुमर्हति।
प्रकाशः स्वैरिणामेव भवान् भक्तिमतां प्रभो॥१४

केन्ह लूक ज्ञाण यूग वगैरऽः सऽऽधित
च़्ये लायक छी बनान नाथ
पनऽःन्यन भऽक्तयन युस सर्वदा प्रात
तऽमिसई सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१४॥

भक्तानां नार्तयो नाप्यस्त्याध्यानं स्वात्मनस्तव।
तथाप्यस्ति शिवेत्येतत्किमप्येषां बहिर्मुखे॥१५॥

भऽक्तयन चान्यन ही भगवानऽः
द्वख दऽऽद्य् छिनऽः ज़ान्ह आसानई
स्वात्मऽः रूप च़ऽः लभऽनऽच्य केन्ह अभिलाशा
तिमन ज़ान्ह ति नऽः रोजऽऽनी
अऽऽसस तिहिन्दिस मंज शूभिदार
शिव नाव प्रथ वक्तऽः नच़ऽःवोनई
सुई शिवऽः नाव सर्वदा ज़ऽप्य् ज़ऽप्य्
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१५॥

सर्वाभासावभासो यो विमर्शवलितोऽखिलम्।
अहमेतदिति स्तौमि तां क्रियाशक्तिमीश ते॥१६॥

बऽई छुस त बऽई छुस सोरुई ज़गत छुस
सारिनई गाशन हुन्द इः प्रकाश
स्वात्मऽः परामर्श परिपूर्ण गव इः
अहं रूपऽः मन्त्रुक फ्वलमुत व्यकास
ही ईशऽः क्रियाशक्ति चऽऽन्य गयि इहऽऽय
अऽथ्य् मंज़ करऽःहऽऽ बऽः समावास
अमी रूपऽः प्रणाम वारऽः पऽऽठ्य् कऽर्य कऽर्य
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१६॥

वर्तन्ते जन्तवोऽशेषा अपि ब्रह्मेन्द्रविष्णवः।
ग्रसमानास्ततो वन्दे देव विश्वं भवन्मयम्॥१७॥

ब्रह्मा विष्णू इन्दराजऽः तऽः सऽऽरी लूक
पनऽन्य् पनऽन्य् विषय, वछिम ख्यवऽःवऽन्य्
तवय च़्येः निश अभिन्न यथ जगतस नमित
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१७॥

तथा

युसऽः युसऽः कऽऽम यस मटि छय थवमऽच़
सु वुछुम स्वऽई कऽऽम करान द्वह रात
पनऽन्य् कऽऽम च़्यई रूपऽः जगऽतस नमिथऽई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१७॥

कार युस छुई च़्येः मटि ख्वतमुत
छुया सुः च़्येः पूर क्ररमुत
क्ररऽथई पूर लभुत भगवान
च़ऽछुक इन्सान च़ऽः छुक भगवान (दीन)

सतो विनाशसम्बन्धान्मत्परं निखिलं मृषा।
एवमेवोद्यते नाथ त्वया संहारलीलया॥१८॥

गछऽःवुन नाशस आसनऽः किन इः जगत
च़्येः निश भ्युन छु सोरुई अपऽःज़ुई
सम्हारऽः खेलि सऽऽत्य, ती वनन वऽऽलिसई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥१८॥

ध्यातमात्रमुपतिष्ठत एव
त्वद्वपुर्वरद भक्तिधनानाम्।
अप्यचिन्त्यमखिलाद्भुतचिन्ता-
कर्तृतां प्रति च ते विजयन्ते॥१९॥

फिकिरिः नऽः तरऽःवुन स्वरूप चोन भक्तिजन
ध्यान करऽःवुनुई यकदम लभान

तवय तिम सऽऽरी अदभुत कारुबार
करनस प्यठ छी हुश्यार आसान
च़्यऽई वरदातस पनऽःनिस मऽऽलिकस
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम्॥१९॥

तावकभक्तिरसासव-
सेकादिव सुखितमर्ममण्डलस्फुरितैः।
नृत्यति वीरजनो निशि
वेतालकुलैः कृतोत्साहः॥२०॥

चानि भक्ती हन्दि मयऽः सगऽः तस स्वखी
वीरस फाञ्स्यौ, मंज़ऽः वीताल
चमकित रातऽःसई, मंज़ नच़ऽः वनि सई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम॥२०॥

तथा

पऽज़्य् चऽऽन्य् भक्त इम वीर बऽडय् आसान
समावीशऽः भक्ति मस च्यऽई च्यऽई तिम
भीदऽः गण्डःवऽई सऽऽत्य ज़ोतऽः वऽनि इमऽः छि
इन्द्रययि रूपऽः वीतालऽः भैरव
तिमऽःवऽई सऽऽत्य च़्यथ व्यकासस वऽऽतिथई
मायायि रऽऽच़ मंज़ऽई छि नच़ान॥२०॥

आरब्धा भवदभिनुति-
रमुना येनाङ्ककेन मम शम्भो।
तेनापर्यन्तमिमं कालं
दृढमखिलमेव भविषीष्ट॥२१॥

ही शम्भू इथऽः पऽऽठय कऽर तुता चऽऽन्य्
दऽर्य् पऽऽठय दोह त रात सदा सर्वदा
तिथय पऽऽठय अन्तऽः समयस तामत
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽःहऽऽ प्रणाम॥२१॥

सार त सीर
भीदऽः रूपऽः गण्ड गव इः सोरुइ सम्सार
अमी मंज़ऽः अभीद वछुन गव वीरता
भीदऽरूपऽः सम्सारऽः मंज़ऽई सार कडिथई
यन्द्रययि यलि अभीद अमृत लभान
तिमऽई छि वीतालऽः भैरवऽः रूप
करनीश्वरी दीवीयः आसान
यस वीरस अमि रूपऽः समावीशऽ
मस्तुक नशऽः रोज़िः द्वह तय रात
च्यथ व्यकासऽः यऽथ्य् मायायि मंज सुः
आनन्दऽः सऽऽत्य छु नच़निः लगान
यऽऽनी भैरवी म्वदरा प्रऽऽवित
चिदानन्दऽः भैरव सुई छु बनान
सत्गुरऽः दयायि सऽऽतिन दीनस शायद
अमि भावऽच्य् छिह छि लगान
बजर ईश्वरस्वरूपुन कोता वनऽः बऽः
छुम नऽः सु ताकत ज्यवि आसान
यथ अनिगटि मंज यन्द्रययि रहज़न
आम लूकन यति मऽऽरित छनान
तऽथ्य् मायायि मंज़ तिम वीरऽः भैरव
यन्द्रयवऽई सऽऽत्य आत्मा लभान
सुई आनन्दऽःमय मस चनऽः वऽऽलिसई
पनऽःनिस सऽऽमियस करऽः बऽः प्रणाम

सत्गुरु वन्दना

दृष्टान्तो नैवदृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः
स्पर्शश्चेत्तत्रकल्प्यः परिणमयति सुवर्णत्वेऽश्मसारम्।
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीयशिष्ये
स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वालौकिकेन॥

(श्री रामेश्वर जी झा)

अद्भुतानन्दसन्दोह
भानदानमहोत्सवः
नित्यं विराजतेयत्र
तत्रत्यो नहि दुःखभाक्॥

(श्री रामेश्वर जी झा)

द्वारऽः द्वारि भाव छू सारिनई उपायन
ग्वडऽः न्युक द्वार तति ग्वरऽःद्वारऽः द्वार
तऽथ्य् छुस शर्ण बऽः तती म्येः प्रऽऽवम्
सतग्वरऽः दया युसऽः सरिची सार॥
अथ द्वारस छी थम ज़ऽः
शारिका दीवी प्रभा जी नाव
शेर छुस पानऽः ईश्वर स्वरूप
"दास" गुंजूसऽऽब "दीन" तस नाव

"दीन"

अर्थ

तन्त्रालोक में स्वात्म साक्षात्कार के चार उपाय कहे हैं १. आणवोपाय २. शाक्तोपाय ३. शाम्भवोपाय और ४. अनुपाय

एक दिन भगवान गुरुदेव ईश्वर स्वरूप श्रीमान् लक्ष्मण जू महाराज ने अपने व्याख्यान में समझाया कि इन चारों उपायों का द्वारःद्वारि भाव है यानी पहला उपाय दूसरे उपाय के अन्दर जाने का दरवाजा है दूसरा तीसरे का इत्यादि —॥

इस व्याख्यान का विमर्शन करने पर "दीन" को इन चार उपाय (जो सद्गुरु महाराज से सीखने होते हैं) से पहले एक और भी पहला द्वार विमर्श में आया। वह सद्गुरु महाराज के शुभ आश्रम का द्वार था। "दीन" उसी द्वार की शरण लेकर गुरु महाराज की दया पाकर "नाथ" हुआ।

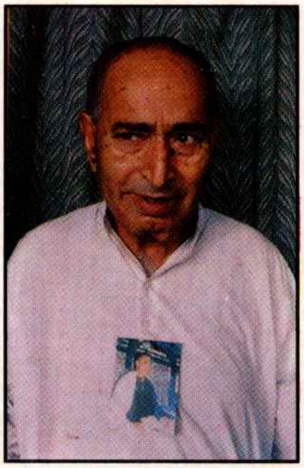
जय गुरुदेव

"दीनानाथ"



आधुनिक युग की लल्लेश्वरी

सुश्री शारिका देवी



कलऽः न्वम्रित छुस वछान दूह रात सुय
यथ दिलस मंज युस खनित तसवीर चोन
'दीन'

जन्मतिथि : ७-५-१९११

स्वामी विवेकानन्द जी महाराज के शिष्य श्री सुदर्शन गंजू के सुपुत्र श्री दीनानाथ जी गंजू, ईश्वर स्वरूप लक्ष्मण जी महाराज के अनन्य भक्त व सेवक। सद्गुरु महाराज की कृपा के विशेषपात्र। अपने ऐश्वर्यमय यौवन में ही विषय वासनाओं का तिरस्कार कर इंजीनियर गंजू ने गुरुचरणों की शरण ली। भाव प्रगाढ़ और अनुराग असीम। सद्गुरु कृपा से ईर्ष्या द्वेष व काम क्रोध की भर्त्सना कर गुरुचरणों में लीन। साधना के कुछेक आयामों को अल्पायु में ही लांघकर सद्गुरु सेवा ही जीवन का चरम उद्देश्य। ईश्वर आश्रम निशात में सद्गुरु के अगल बगल में अपना आवास स्थान बनाकर अपने को धन्य समझने वाले कवि दीन के हृदय में श्रद्धा-भक्ति-ज्ञान और वैराग्य के बीज क्रमशः प्रस्फुटित। परिणामस्वरूप सद्गुरु की पुण्य स्मृति में जम्मू महेन्द्रनगर में स्थित, संलग्न भूमि खण्ड सहित अपना भव्य मकान ईश्वर आश्रम ट्रस्ट निशात कश्मीर को सौंप कर दानवीरता का प्रदर्शन। बाल्यकाल से विज्ञान के विषयों के साथ वादानुवाद करने वाले युवक के हृदय का सद्गुरु अनुकम्पा से अकस्मात् परिवर्तन। संस्कृत हिन्दी भाषा व देवनागरी से कम परिचित दीन का शिवसूत्र आदि महान शैव ग्रन्थों का अनुशीलन व कईयों का कश्मीरी भाषा में पद्यान्तरण सद्गुरु दीक्षा भागीरथी में आपादमस्तक उन्मज्जन का परिणाम।

सद्गुरु महाराज इन को सद्गति प्रदान करें। यही प्रबल कामना है।

(ईश्वर आश्रम ट्रस्ट)
निशात